सम्यक्

(सन् 1987 से प्रकाशित)

हिन्दी भाषा एवं साहित्य का सामयिक प्रकाशन

वर्ष–34 अंक–अक्टूबर–दिसम्बर–2021

(लघुकथा विशेषांक)

इस अंक में –

1. तीस महिला लघुकथाकार और बत्तीस पुरुष लघुकथाकारों की 81 लघुकथाएँ
2. चार लघुकथाकारों के द्वारा लिखे चार महत्वपूर्ण आलेख

सम्यक्

(सन् 1987 से प्रकाशित)

हिन्दी भाषा एवं साहित्य का सामयिक प्रकाशन

अक्टूबर–दिसम्बर–2021 अंक

(लघुकथा विशेषांक)

संस्थापक सम्पादक

स्व.मदन मोहन उपेन्द्र

प्रधान सम्पादक

डॉ.दिनेश पाठक'शशि'

सम्पादक

आचार्य नीरज शास्त्री

तकनीकी सहायक

मनुज चतुर्वेदी 'भारत'

अनुज चतुर्वेदी 'अनुभव'

(सम्पादन, संचालन पूर्णतः अवैतनिक , प्रकल्प अव्यवसायिक है)

सम्पादकीय पता (पंजीकृत)–

34/2, गायत्री निवास, लाजपत नगर, एन.एच.–2
मथुरा–281004, मोबा–9259146669

पत्राचार हेतु पता –

28, सारंग विहार, मथुरा–281006

मोबा–9870631805

प्रकाशक–

तुलसी साहित्य–संस्कृति अकादमी, न्यास,
मथुरा–281004

ईमेल-samyakmag2021@gmail.com

****

अनुक्रमणिका

सम्पादकीय– 4

लघुकथाएँ– 5–42

अशोक मिश्र
1. धर्म कौन 2. आँखें 5

त्रिलोक सिंह ठकुरेला
1. हरा दुपट्टा 2. पिताजी 6

मीना शर्मा
1. डर 2. स्वाभिमान 6

अखिलेश श्रीवास्तव चमन
1. गुरुमंत्र 7

कल्पना मनोरमा
1. पीली चिड़िया 8

शैलेष गुप्त वीर
1. दोहरे मापदण्ड 9

नीलम राकेश
1. मिलावट 2. समाधान 9

किशोर श्रीवास्तव
1. जिज्ञासा 2. प्रॉमिज डे 10

शशि श्रीवास्तव
1. बंटवारे का दर्द 10

गोविन्द शर्मा
1. रैंम्प 10

उषा शर्मा
1. परिवर्तन 11

शराफत अली खान
1. सह–अस्तित्व 11

डॉ. अमिता दुबे
1. भगवान का रूप 2. ब्याज का मोह 12

अशोक अश्रु
1. जन्मदिन 12

डॉ.शील कौशिक
1. बदलती प्रश्नावली 13

विकेश निझावन
1. शोक संदेश 13

कीर्ति श्रीवास्तव
1. देशद्रोह 14

डॉ.विष्णु शास्त्री सरल
1. सम्बन्धों की छाया 14

कांता राय
1. अस्तित्व की यात्रा 2. बैकग्राउण्ड 14

कमलेश भारतीय
1. बहुत दिनों बाद 2. उपहार 15

अंजना छलोत्रे सवि
1. कर्मप्रधान 16

विजय कुमार
1. अपना हिस्सा 16
आशा शैली
1. धरना और खेत 17
अनुराग शर्मा
1. कौमी एकता 2. समझ 18
संतोष श्रीवास्तव
1. देशप्रेम 2. उषा की दीपावली 19
हीरालाल नागर
1. मोर्चा दर मोर्चा 2. पिताजी 19
सविता मिश्रा 'अक्षजा'
1. बेड़ियाँ टूटेंगीं 2. दोषी कौन 20
आचार्य नीरज शास्त्री
1. विद्रोह की सजा 22
अम्बुजा एन मलखेड़कर
1. स्वच्छ दीपावली, स्वस्थ दीपावली 22
डॉ.रवि शर्मा'मधुप'
1. त्यागपत्र, 2. विचित्र ईमान 23
कमलेश शर्मा
1. कबाड़ 2, बिखरी कहानियाँ 23
सुकेश साहनी
1.. सूखा , 2. ब्रेक पॉइंट 24
डॉ.संध्या तिवारी
1. एक और पुरु 25
भगवती प्रसाद द्विवेदी
1. इडेन एक्सप्रेस, 2. न्यूट्रान बम्ब 26
नरेन्द्र कौर छाबड़ा
1. विद्रोह 27
सिद्धेश्वर
1. हरामखोर 28
शशि पाठक
1. संगति का असर 28
पंकज शर्मा
1. सिगरेट 29
उषा सोमानी
1. रिश्तों की मिठास 2. रिश्तों की समझ 29
इंजी.अरुण कुमार जैन
1. कोयले की खदान 30
डॉ.अंजना अनिल
1. छोटा मुँह... 30
प्रो.नवसंगीत सिंह
1. चयन 31
डॉ.अनीता चौधरी
1. परिणति 31
डॉ.घनश्याम मैथिल 'अमृत'
1. दूसरा पहलू 31
डॉ.कविता भट्ट
1. जुगनू की चमक 32
डॉ.रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'
1. दूसरा सरोवर 2. मसीहा 32
श्रीमती राजबाला 'राज'
1. चिंता 33
डॉ.सीताराम गुप्त
1. अवलम्बन 34
मिन्नी मिश्रा
1. मेहनत की रोटी 34
डॉ.राकेश चक्र
1. पुत्रवधु 35
डॉ.मालती बसंत
1. दर्द की दवा 35
सत्येन्द्र सिंह
1. ट्यूबलाइट 36
गिरिजा कुलश्रेष्ठ
1. कितनी पास, कितनी दूर 36
दिलीप भाटिया
1. पिक नहीं ली? 37
नीतू सुदीप्ति 'नित्या'
1. धूप वाला चश्मा 37
सुशील चावला
1. अकड़ी हुई गर्दन 38
डॉ.संतोष शर्मा
1. श्रद्धांजलि 39
रमेश प्रसून
कैसा–कैसा है यह आदमी 39
डॉ.सुधा गोयल
1. छत 40
डॉ.अशोक भाटिया
1. दिल की बात 40
निर्देश निधि
1. हमें नाही लागत है सर्दी,गर्मी 41
डॉ.दिनेश पाठक'शशि'
1. सत्य का बोध 42

आलेख– 43–50

1.कहानी का बीज रूप नहीं है लघुकथा
सुकेश साहनी 43
2. लघुकथा; कुछ अनुत्तरित प्रश्न
रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' 44
3 आधुनिक लघुकथा; अपने तेवर बदल रही है
डॉ.सुरेन्द्र गुप्त 46
4 लघुकथा; और शास्त्रीय सवाल
डॉ.अशोक भाटिया 48

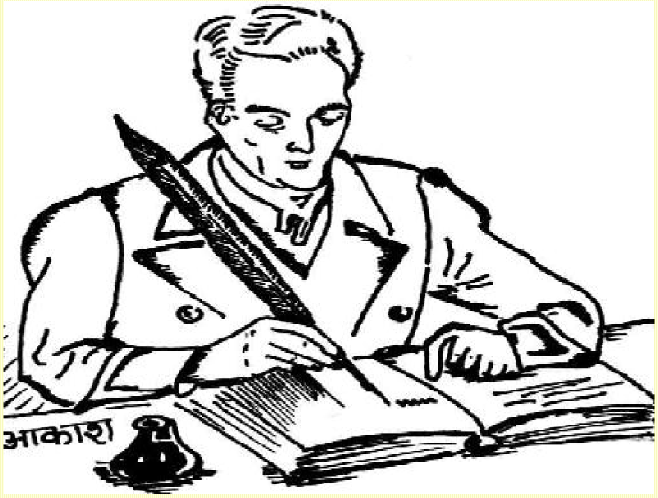

सम्पादकीय–

हिन्दी भाषा एवं साहित्य के सामयिक प्रकाशन की पत्रिका 'सम्यक्' का यह तीसरा लघुकथा विशेषांक है। इससे पूर्व इसके संस्थापक सम्पादक स्व. श्री मदन मोहन उपेन्द्र जी के जीवित रहते हुए दो लघुकथा विशेषांक प्रकाशित हुए थे।

सन् 1997 जन–जून संयुक्तांक समकालीन लघुकथा अंक के रूप में प्रकाशित हुआ था जिसमें लेखक और लेखिका दोनों की लघुकथाओं को समान रूप से स्थान दिया गया था तो सन् 2000 का जुलाई–दिसम्बर अंक महिला लघुकथाकार विशेषांक के रूप में आया था जिसमें 44 महिला लघुकथाकारों की लघुकथाएँ तथा चार लघु लेख समाहित किए गये थे।

आज लघुकथा पूर्णरूप से एक स्वतंत्र विधा के रूप में तो स्वीकृत की ही जा चुकी है साथ ही विश्वविद्यालयों के हिन्दी पाठ्यक्रमों में भी शामिल की जाने लगी है, यह तथ्य लघुकथा की महत्ता को स्वयं सिद्ध करता है।

लघुकथा को इस स्थान तक लाने में अनेकानेक लघुकथाकार और हितैषियों का अद्भुत योगदान रहा है। डॉ.महाराज कृष्ण जैन के निदेशन और सम्पादन में कहानी लेखन महाविद्यालय अम्बाला छावनी की मुखपत्रिका 'तारिका' और अब 'शुभ तारिका' मुख्यतः लघुकथा की विशिष्ट पत्रिका रही है जो गत 45 वर्ष से लघुकथा के उन्नयन का कार्य कर रही है। उसी दौरान भारत यायावर के सम्पादन में 'नवतारा' पत्रिका लघुकथा को समर्पित रही। दरियागंज दिल्ली से बलराम एवं रमेश बत्तरा के सहसम्पादन में प्रकाशित होने वाली तत्कालीन उत्कृष्ट पत्रिका 'सारिका' ने तो अनेक लघुकथाकारों को प्रोत्साहित किया।

सन् 1980 में वीरेन्द्र जैन के सम्पादन में 'विश्व वैभव' पत्रिका (मुंबई) ने विश्व लघुकथा विशेषांक प्रकाशित किया जिसमें अमरीकी, पोलिस, इण्डोनेशियाई, मॉरिशस, वर्मा, रूसी, जर्मन, चीनी आदि लघुकथाकारों के साथ–साथ भारत के भी लगभग 30 लघुकथाकारों की लघुकथाओं को समाहित किया गया था।

सन् 1981 में सुशील राजेश के सम्पादन में 'अक्षरों का विद्रोह' लघुकथा संकलन प्रकाशित किया गया जिसमें तत्कालीन 41 लघुकथकारों की लघुकथाओं को सम्मिलित किया गया।

सन् 1981 में विकेश निझावन और हीरालाल नागर के सम्पादन में 'कितनी आवाजें' लघुकथा संकलन प्रकाशित किया गया जिसमें तत्कालीन 112 लघुकथाकारों की लघुकथाओं को सम्मिलित किया गया।

सन् 1983 में हरनाम शर्मा के सम्पादन में 'स्वरों का आक्रोश' लघुकथा संकलन प्रकाशित किया गया जिसमें तत्कालीन 114 लघुकथाकारों की लघुकथाओं को सम्मिलित किया गया।

सन् 1992 में अमरनाथ चौधरी अब्ज के सम्पादन में 'दहशत' लघुकथा संकलन प्रकाशित किया गया जिसमें तत्कालीन 71 लघुकथाकारों की लघुकथाओं को सम्मिलित किया गया।

सन् 1997 में डॉ. दिनेश पाठक 'शशि' के सम्पादन में 'समकालीन लघुकथा, परख एवं पहचान' लघुकथा संकलन प्रकाशित किया गया।

सन् 1999 में प्रेम किशोर पटाखा व अशोक अंजुम के सम्पादन में 'व्यंग्य भरे कटाक्ष' लघुकथा संकलन प्रकाशित किया गया जिसमें तत्कालीन 72 लघुकथाकारों की 144 लघुकथाओं को सम्मिलित किया गया।

इसी प्रकार सन् 2003 में डॉ. दिनेश पाठक 'शशि' एवं श्रीमती शशि पाठक के संयुक्त सम्पादन में 'कदम–कदम समझौते' लघुकथा संकलन प्रकाशित किया गया। तो सन् 2004 में कनुभारतीय ने 'अछूते सन्दर्भ' लघुकथा संकलन, योगेन्द्र मौदगिल ने 'चर्चित व्यंग्य लघुकथाएँ' सन् 2005 में डॉ. दिनेश पाठक 'शशि' ने 'शब्दों के तेवर' लघुकथा संकलन, सन् 2009 में सुकेश साहनी और रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु' ने 'बाल–मनोवैज्ञानिक लघुकथाएँ', सन् 2010 में कालीचरण प्रेमी और पुष्पारघु ने 'अन्धा मोड़' लघुकथा संकलन, सन् 2012 में त्रिलोक सिंह ठकुरेला ने 'आधुनिक हिन्दी लघुकथाएँ' लघुकथा संकलनों का सम्पादन किया जिनमें अनेकानेक लघुकथाकारों की लघुकथाएँ समाहित की गईं। इनके अलावा अनेक लघुकथाकारों के एकल लघुकथा

संग्रह भी प्रचुर मात्रा में प्रकाशित हुए।

बलराम, रमेश बत्तरा, डॉ. कमल चोपड़ा, मधुदीप, अशोक मिश्र, मधुकान्त, नासिरा शर्मा, हरनाम शर्मा, सतीशराज पुष्करणा, कृष्ण मनु, कृष्ण कमलेश, गुलशन बालानी, अमरनाथ चौधरी अब्ज, डॉ.अशोक भाटिया, रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु', डॉ.सुरेन्द्र गुप्त, सुकेश साहनी, विक्रम सोनी, डॉ.स्वर्ण किरण, पुष्कर द्विवेदी, डॉ.बालेन्दु शेखर तिवारी, राजेन्द्र मोहन त्रिवेदी, कमलेश भारतीय, विकेश निझावन, किशोर श्रीवास्तव, उर्मिकृष्ण, डॉ.अलका पाठक, गिरिजा कुलश्रेष्ठ, नीलम राकेश, डॉ.उषा यादव, डॉ. दिनेश पाठक 'शशि' आदि अनेकानेक नाम हैं जिन्होंने आठवे, नवें दशक में लघुकथा के विकास और उन्नयन के पुरजोर प्रयास किए जिसके प्रतिफल आज लघुकथा अन्य विधाओं की भाँति ही एक स्वतंत्र विधा के रूप में पुष्पित-पल्लवित हो रही है।

सम्यक् के इस लघुकथा विशेषांक में जिस क्रम से लघुकथाकारों की रचनाएँ प्राप्त होती गईं उसी क्रम में उनको रखा गया है किसी वरिष्ठता के आधार पर नहीं। इसमें 31 पुरुष और 30 महिला लघुकथाकारों की उत्कृष्ट लघुकथाओं को शामिल किया गया है। लेखन के क्षेत्र में उतरीं नारी आज अनेक युगीन समस्याओं को अपने लेखन के माध्यम से सामने ला रही हैं। इस अंक में भी उनकी ऐसी ही अनूठी लघुकथाएँ पाठक वर्ग को पढ़ने को मिलेंगीं। इसके साथ ही लघुकथाओं के सभी किन्तु, परन्तु का जबाव देते हुए चार वरिष्ठ लघुकथाकारों के एक-एक आलेख को भी समाहित किया गया है ताकि नवलघुकथाकारों को मार्गदर्शन भी प्राप्त हो सके।

गत दो वर्ष में वैश्विक महामारी कोविड-19 ने हमारे बीच के बहुत से वरिष्ठ साहित्यकारों को हमसे दूर कर दिया है जिनकी क्षतिपूर्ति असम्भव है। सम्यक् पत्रिका उन सभी को विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करती है।

*डॉ.दिनेश पाठक'शशि'
9870631805

लघुकथाएँ– 5–42

अशोक कुमार मिश्र

14 सितंबर 1962 को फैजाबाद में जन्मे अशोक कुमार मिश्र मूल रूप से कहानीकार हैं। आजीविका के लिए मीडिया संस्थानों से जुड़कर दो दशक तक पत्रकारिता। 1982 से कहानी, लघुकथा, लेख, कविता, संस्मरण, साक्षात्कार, रपट, टिप्पणियां, फीचर आदि विधाओं में लेखन। वर्ष 2010 में छमाही पत्रिका रचना क्रम के तीन अंकों का संपादन। वर्ष 2012 से 2019 तक त्रैमासिक बहुवचन का संपादन। पत्रिका पुस्तक वार्ता का 2018–2019 के दौरान संपादन। अनेक पत्र–पत्रिकाओं में विपुल संख्या में कहानियां, संस्मरण, पुस्तक समीक्षाएं, टिप्पणियां, साक्षात्कार आदि प्रकाशित। एक लघुकथा संग्रह एवं एक कहानी संग्रह प्रकाशित। कुछ पुस्तकों का संपादन कार्य जारी। विजय वर्मा कथा सम्मान सहित कई संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत। सम्प्रति–महात्मागांधी अंतर्राष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा की वेबसाइट हिंदी समय के संपादक के रूप में कार्यरत। मोबा–7888048765६ 94223 86554

आँखें

एक निर्दोष युवक को जब फांसी होने लगी तो जेलर ने उसकी अंतिम इच्छा पूछी,–'तुम्हारी मरने से पूर्व कोई अंतिम इच्छा हो तो बताओ।'

"क्या आप पूरी कर सकेंगे?"

'पूरा प्रयास करेंगे।'

"तो सुनिए और कान खोलकर सुनिए। मैं अपनी दोनों आँखें इस देश की अन्धी न्याय–व्यवस्था को देना चाहता हूँ।

धर्म कौन?

"तुम कौन?"

'मुसलमान।'–मुस्लिमों ने उसे गले लगाया।

"तुम कौन?"

'सिक्ख।'–ओह आओ बादशाहो।

"और भैया तुम कौन?"

'हिन्दू, रामभक्त।'–उसे हिन्दू साथ ले गये।

घूमते–घामते कुछ दूर पर उन्हें एक आदमी मिला। उन्होंने उससे पूछा–"भैय्ये तुम कौन?"

उसने कहा–'मैं हूँ इनसान और इंसानियत मेरा धर्म है।"–सबके पाँव ठिठक गये और एक सन्नटा

त्रिलोक सिंह ठकुरेला

जन्म– 01अक्टूबर 1966
बाल साहित्य, कुण्डलिया, लघुकथाएँ, गीत, मुकरी आदि की एक दर्जन पुस्तकें प्रकाशित। राजस्थान साहित्य अकादमी सहित कई संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत। महाराष्ट्र राज्य की दसवीं कक्षा की पाठ्यपुस्तक हिंदी कुमारभारती में लघुकथा सहित एक दर्जन से अधिक पाठ्य पुस्तकों में रचनाएँ संकलित। उत्तर पश्चिम रेलवे में इंजीनियर। मोबा0 9460714267

हरा दुपट्टा

रेलगाड़ी में उस दिन कुछ ज्यादा ही भीड़ थी, इसलिए सरोज को खड़े होकर यात्रा करनी पड़ रही थी । उसे दो स्टेशन बाद ही उतरना था। उसके पास ही अपने चार बच्चों के साथ बुर्के में एक महिला बैठी थी।

बुर्के बाली महिला की नजर सरोज की ओर गयी तो लगा कि वह उसे पहचानने की कोशिश कर रही है। बुर्के वाली महिला ने सरोज को अपने पास बुलाते हुए सीट पर जगह दी। फिर पूछा कि 'क्या तुम सरोज हो?'

सरोज ने हाँ में सर हिलाया तो वह सरोज से लिपट गयी। बुर्का हटाते हुए उसने प्रश्नों की झड़ी लगा दी– सरोज, बहुत सालों बाद मिली हो। कैसी हो ? शादी हो गयी ? अंकल आंटी कैसे हैं?

देखते ही सरोज भी खुशी से झूम उठी ''रूबिया, तुम?''

''हाँ, सरोज।'' रूबिया ने कहा।
अरे, तुम अचानक कहाँ गायब हो गयीं थीं? कालेज छोड़ने के बाद तुम्हारी कोई खोज खबर ही नहीं मिली।

सरोज, अब्बा दंगों की भेंट चढ़ गये तो हमने शहर ही छोड़ दिया और अपने अंकल के पास सूरत चले गये। अब अम्मी भी नहीं रहीं।

'रूबिया, बहुत दुःख हुआ। बीस साल में मैं तुम्हें कभी नहीं भूली। तुम्हारी याद बराबर आती रही।

''तो मैं भी तुम्हें कब भूल पायी, सरोज। तुम्हारा दिया दुपट्टा हमेशा अपने पास रखती हूँ।''– यह कहकर रूबिया ने अपने छोटे से बैग से हरा दुपट्टा निकाला और हवा में लहरा दिया।

यह दुपट्टा वर्षों पूर्व सरोज ने रूबिया को दिया था। खुशी के अतिरेक में थोड़ी देर के लिए दोनों निःशब्द हो गयीं। आत्मीयता की गंध हरे दुपट्टे से निकलकर पूरे कम्पार्टमेंट में फैल चुकी थी।

पिताजी

पिताजी एक माह से बीमार थे। उनके व माँ के कई बार फोन आ चुके थे किन्तु मैं गाँव नहीं जा पाया। सच कहूँ तो मैं छुट्टियाँ बचाने के मूड में था। उमा का सुझाव था बुखार ही तो है, कोई गम्भीर बात तो है नहीं। दो माह बाद दीपावली है, तब जाना ही है। अब जाकर क्या करोगे। सब जानते हैं कि हम सौ किलोमीटर दूर रहते हैं। बार–बार किराया खर्च करने में कौन सी समझदारी है।

एक दिन माँ का फिर फोन आया। माँ गुस्से में थी–'तेरे पिताजी बीमार हैं और तुझे आने तक की फुर्सत नहीं। वह बहुत नाराज हैं तुझसे। कह रहे थे कि अब तुझसे कभी बात नहीं करेंगे।'

उसी दिन ड्यूटी जाते समय मुझे ऑटो रिक्शा ने टक्कर मार दी। मेरे बायें पैर पर प्लास्टर चढ़ाना पड़ा।

उमा ने माँ को फोन कर दिया था। दो घंटे में ही पिताजी हॉस्पीटल में आ पहुँचे। वह बीमारी की वजह से बहुत कमजोर किन्तु दृढ थे। मुझे सांत्वना देते हुए बोले–'किसी तरह की चिंता मत करना। थोड़े दिनों की परेशानी है। तू जल्दी ही ठीक हो जायेगा।'

उन्होंने मुझे दस हजार रुपये थमाते हुए कहा 'रख ले, काम आयेंगे। '

मैं क्या बोलता। मुझे स्वयं के व्यवहार पर शर्म आ रही थी।

जीवन के झंझावात में पिताजी किसी विशाल चट्टान की तरह मेरे साथ खड़े थे।

श्रीमती मीना शर्मा

जन्म– 08 अगस्त 1958
कहानी, बाल साहित्य, गीत, लघुकथाएँ आदि की एक दर्जन पुस्तकें प्रकाशित। आकाशवाणी एवं दूरदर्शन से अनेक रचनाओं का प्रसारण। कई संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत।
मोबा 7225087753

डर

'ये जो तुम हर वक्त चीखते रहते हो मुझ पर ..कभी नहीं सोचते कि मैं भी इंसान हूँ, तुम मुझे ब्याह कर लाए थे देख परख कर। अब रात दिन जीना मुहाल किया है मेरा।'––कह तो रही थी सुधा पर

जिस तरह कलेजा धड़क रहा था अगर कोई पास खड़ा होता तो साफ सुन सकता था।

' कहा था न तुझसे, तेरी शकल पसंद नहीं है मुझे ..निकलती क्यों नहीं मेरे घर से ...सुधा की ओर दौड़ते हुए सुधाकर चीखता जा रहा था।'

'हर दिन का तमाशा बना रखा है इस लड़के ने ..बात–बेबात पीटता रहता है बहू को ..अरे जान लेगा क्या उसकी। पहले भी तो यही रंग–रूप था उसका। काम धंधा क्या बंद हुआ लड़का पगला गया है। कोई न कोई हर वक्त लड़ने को चाहिए।'–अब अम्माँ की आवाज तेज होने लगी है।

'अरे रुको ..रुको ..।'–कहती रही कपड़े साफ करती सुधा पर क्रोध में अंधा सुधाकर कब रुकता... सामने छत पर फैले सर्फ के पानी पर पैर पड़ा और फिसल ही गया .....मइया....चीखते हुए गिरते सुधाकर को सुधा ने दोनों हाथों को अड़ाकर सँभाल ही लिया। डरा हुआ पति, पत्नी के पैरों तक आकर संभला ..न संभलता तो दो मंजिले घर के आँगन में होता ।

'ये औरतें किस मिट्टी की बनी होती हैं?' –सुधाकर का बड़बड़ाना जारी था।

स्वाभिमान

'तुम जानती हो कि जीते–जी किसी आग में जलना कैसा होता है, चाहे वह भीतर हो या बाहर .. ...ससुराल के नाम से ही दहशत होने लगी है मुझे ! तुम समझ सकती हो क्योंकि तुम स्त्री हो और मेरी माँ भी ।'

'हाँ समझती हूँ ....शक और क्रोध में सब स्वाहा हो जाता है। गाय को भी अगर खूँटे से न खोला जाए तो वह भी रस्सी तोड़कर भाग खड़ी होती है फिर तुमने तो बहुत प्रयत्न किए , मकान को घर बनाने के ...बहुत सहा है तुमने जीवन भर, मुझे तुम पर गर्व है गरिमा । तुम जैसी बेटी ईश्वर सबको दें। लेकिन मैं तो बस यह समझने का प्रयास कर रही हूँ कि तुमने अपना अधिकार क्यों नहीं माँगा, क्यों वनवास चयन किया ...क्यों? राजपाट एक झटके में छोड़ दिया ....तुम सुख से रह सकती थीं।'

'कुछ प्रश्न अनुत्तरित रहें तो मर्यादा बनी रहती है माँ..और हाँ, सुख महलों में कम है कुटीर की अपेक्षा। स्वाभिमान बना रहे यह भी आवश्यक है। माँ तुम इसे अहंकार न समझ लेना । मैं मुखौटों के साथ निष्प्राण होकर नहीं जीना चाहती और मर मर कर तो कतई नहीं।'

'चलो बेटी फिर खेतों से खरपतवार की सफाई में लग जाएँ।'–मुस्कुराहट दोनों चेहरों पर तिर आई। बादलों को चीर कर हल्की सी धूप नवंबर माह की दोपहर को खुशनुमा रंग से रँगती सी लगी।

अखिलेश श्रीवास्तव चमन

जन्म– 19 दिसम्बर 1958
उत्तर प्रदेश सरकार की सेवा में प्रथमश्रेणी अधिकारी (एडीशनल आई0जी0 रजिस्ट्रेशन, एडीशनलकमिश्नर स्टाम्प) के पद से सेवानिवृत। उपन्यास, कहानी, लघुकथा, कविता,लेख, एकांकी, आलोचना, संस्मरण आदि कई विधाओं मेंलेखन। तीन कहानीसंग्रह, एक आलोचना, एक यात्रा संस्मरण, चार बाल उपन्यास, दस बाल कहानी संग्रह, छः बाल कविता संग्रह, एक बाल एकांकी तथा बालोपयोगी लेखों के तीन संग्रह सहित कुल उनतीस पुस्तकें प्रकाशित। कईसंस्थाओं द्वारा पुरस्कृत। मोबा–9415215139, 6394976289

गुरुमंत्र

उसकी शादी हुयी। शादी के तीसरे दिन प्रीति भोज था। प्रीति–भोज का निमंत्रण–पत्र देने वह अपने एक पुराने गुरु जिन्होंने कालेज के दिनों में उसे पढ़ाया था के घर गया ।

''कल शाम मेरे यहाँ प्रीति–भोज पर पधारने की कृपा करें गुरुदेव। '' अभिवादन के बाद निमंत्रण–पत्र पकड़ाते हुए उसने कहा।

''प्रीति–भोज? किस उपलक्ष्य में बेटे ?'' गुरुजी ने उत्सुकतावश प्रश्न किया।

''मेरी शादी के उपलक्ष्य में। अब मैं एक से दो हो गया गुरुदेव। परसों मेरी शादी हुयी है।'' उसने चहकते हुए बताया।

''क्या कहा! शादी हो गयी और तुम एक से दो हो गए? ऐसा कह कर तूने अनर्थ कर दिया बेटे। मतलब कि तुमने विवाह जैसे महत्वपूर्ण संस्कार का अर्थ ही नहीं समझा।'' खुश होने के बजाय गुरुजी सहसा गंभीर हो गए।

वह अवाक् हो गुरुजी का मुँह ताकने लगा। वह समझ नहीं पा रहा था कि उसने क्या गलत कह दिया। उसकी परेशानी भाँप गुरुजी मुस्कराए फिर बोले–''सच बात यह है बेटे कि तुम एक से दो नहीं बल्कि दो से एक हुए हो। अभी तक तुम्हारा और तुम्हारी पत्नी का, दोनों का दो अलग–अलग जगहों पर दो अलग–अलग व्यक्तित्व थे ...तुम दोनों का एक

दूसरे से सर्वथा अलग स्वतंत्र अस्तित्व था और तुम्हारे सुख–दुःख, हर्ष–विषाद भी अलग थे। किन्तु अब विवाह के बाद तुम दोनों मिल कर एक हो गए यानी कि तुम दोनों के दो अलग व्यक्तित्व एक दूसरे मेंसमाहित होकर एक हो गए। अब तुम दोनों एक दूसरे के पूरक हो गए ...अब तुम्हारे सुख–दुख, हर्ष–विशाद एक हो गए है। अब एक दूसरे के बगैर तुम अपूर्ण और अधूरे हो। प्रेम का यह गणित ऐसा ही अनोखा है बेटे ...यहॉं एक और एक मिल कर एक होता है, दो नहीं। प्रेम के इस यथार्थ को तुम गॉंठ बॉंध लो ...प्रेम का यही अनोखा सूत्र तुम्हारे भावी ग्रहस्थ जीवन के लिए सुख–शान्ति का गुरुमंत्र है। ''

वह मंत्र मुग्ध हो गुरुजी की बातें सुनता रहा और उनकी बात समाप्त होते ही उनके चरणों पर नत–मस्तक हो गया ।

कल्पना मनोरमा

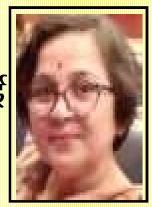

जन्म –04 जून 1972 (यू.पी.) अध्यापन व स्वतंत्र लेखन। नवगीत संग्रह 'कब तक सूरजमुखी बनें हम' प्रकाशित। कई संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत।

मोबा–8953654363

पीली चिड़िया

प्रभा आज सारे कामकाज निपटा कर अपनी पसंद की कवयित्री की कविता पढ़ने बैठी थी। स्त्री विमर्श की कविता पढ़ते हुए किसी किसी बात पर उसका मन हुमक पड़ता और कभी किताब में उंगली फंसाकर शून्य में ताकने लगती। धीर धीरे कविता का रसास्वादन कर रही प्रभा के चेहरे पर कभी हवाइयां उड़ने लगती तो कभी धूसर मुस्कान में होंठ पसर जाते। पढ़ते हुए कविताओं की व्यंजना कब उसके जहन से उतरते हुए शरीर को भारी बनाने लगी उसे भी पता नहीं चला।

'स्त्री कूटती आई है अपनी ख़ुशी के धान अंधेरे की ओखली में।' पंक्ति पर उसका भूला हुआ जीवन आंखों में उतर आया। वह अकुलाने लगी। अपने साथ हुए अत्याचारों की एक लम्बी सूची खुल कर उसको चिढ़ाने लगी।

"कवयित्री कैसे जान गई मेरे मन की हर पीड़ा को? कैसे उसने लिख दिया खुल्लम–खुल्ला स्त्री जीवन की हर छिपाने वाली बात को, यूं सार्वजनिक तौर पर? जिन बातों की परदेदारी में मैंने अपने जीवन की पूरी हुलास को हवन कर दिया उसको यूं लिख बातों को छिपाने में। एक स्त्री के स्याह पड़ चुके जीवन के उस हिस्से को खोलकर दुनिया के सामने कैसे रख सकती है, दूसरी स्त्री ही।'

अवसाद ग्रस्त प्रभा का अवसाद मिश्रित क्रोध उबलने को हो आया। सिर में भंवर पड़ने लगे। वह तुनक कर बुदबुदाई। 'निरी बेवकूफ हो गई हैं आज की कवयित्रियाँ।' अब उसके दिमाग़ की नसें तड़कने लगी थीं। दृष्टि किताब पर थी भी और नहीं भी। वह अपने इर्दगिर्द सदा घिरे रहने वाले सन्नाटों में खोती जा रही थी लेकिन उसी बीच उसे तेज चुभन का एहसास होने लगा। उसके अचेतन मन में एक प्रश्न कौंधा,"क्या मेरे जीवन की चुभन इतनी बढ़ चुकी है जो कभी भी कहीं भी महसूस होने लगती है?"

विचारते हुए उसका ध्यान अचानक उस हाथ की ओर चला गया जो कुर्सी के हत्थे पर निष्क्रिय रखा हुआ था। उसने देखा उसी हाथ पर एक मोटा सा मच्छर आराम से उसका खून पी रहा था। मच्छर का पेट फूलकर लटक चुका था। उसके पेट से लाल खून साफ़ झलक रहा था। प्रभा घबराई तो लेकिन हिल न सकी। उसके जेहन में एक और प्रश्न कौंधा।

"क्या ये मेरा ही खून पी रहा है?'

"हाँ, ये तेरा ही....।" उसकी अंतस चेतना से एक झन्न से आवाज़ निकली और मन में गूंज उठी।

'तो मैं इसे पीने क्यों दे रही हूँ?"

"इसका अंदाज मुझे नहीं, तुम्हें होना चाहिए।" रोशनदान पर बैठी पीली चिड़िया ने पंख फड़फड़ाए और निस्सीम गगन में उड़ती चली गयी।

'रुको तो रुको!' एक क्षण के लिए प्रभा अवाक रह गई.वह बड़बड़ाई और उधर देर तक देखती रही जिधर चिड़िया विलुप्त हो गई थी फिर अचानक उसने किताब वाले हाथ को इतनी सावधानी से उठाया कि उसकी शारीरिक हलचल मच्छर भी नहीं जान सका और पटाक से पटक दिया दूसरे हाथ की कलाई पर।

अचानक हुए प्रहार से मच्छर वहीं ढेर हो गया। प्रभा की धमनियों में बहने वाला खून अब कलाई के ऊपर फैल चुका था। चमड़ी पर अपने गाढ़े लाल खून को देख उसे कुछ अजीब–सा महसूस होने लगा किन्तु उससे भी ज्यादा अचंभित वह अपनी चुभन शांत होने पर थी। उसने रोशनदान से उस चिड़िया को फिर देखना चाहा लेकिन वह नहीं दिखी। प्रभा ने कविता की किताब मुस्कुराते हुए फिर उठा ली।

"स्त्री रहती आई है सदा से हाशिये पर" पंक्ति को फिर से पढ़ा और कुछ सोचते हुए पेंसिल से उसे काट दिया।

"स्त्री हाशिये पर नहीं अपितु जीवन के केंद्र में

रहती आई है।" अपनी पंक्ति टांकते हुए उसने एक गहरी सांस ली।

"हमारी निष्क्रियता ही दूसरों को खून पीने का मौका देती है, प्रभा जी!'

बोलते हुए प्रभा उठी शीशे में खुद को देखा और अपनी ही बाहों में अपने को समेट लिया।

डॉ. शैलेष गुप्त 'वीर'

अन्वेषी, गुफ़्तगू, अनुनाद, तख़्तो ताज, मौसम, पुरवाई, शब्द गंगा, अरण्य वाणी आदि पत्रिकाओं के पूर्व संपादक, सहसंपादक व कार्यकारी संपादक।' एसोसियेट एडिटर– दि वायस ऑफ क्रियेटिव रिसर्च ई–जर्नल। मोबा–9839942005

दोहरे मापदण्ड

अभी श्याम ऑफ़िस से लौटा ही था कि उसकी पत्नी रेनू उस पर उबल उठी–

'सुनो जी! आज मैंने तुम्हारी पासबुक देखी है। पिछले एक साल से हर महीने दस हज़ार रुपये किसे ट्रान्सफर कर रहे हो? सच–सच बता दो।

'अरे वो मम्मी–पापा आजकल काफ़ी परेशान रहते हैं। दोनो बीमार चल रहे हैं और इधर कुछ मकान का भी लफड़ा है।'

रेनू ने झगड़ने के अंदाज़ में कहा– 'यह बकवास मुझे नहीं सुननी। तुम्हीं ने ठेका ले रखा है क्या इन बुड्ढों का। और दूसरे बेटों की कोई ज़िम्मेदारी नहीं है क्या!'

'हाँ, जब उनके बेटे अपनी ज़िम्मेदारी से मुकर गये हैं, तो मेरी ही ज़िम्मेदारी बनती है।'

'मतलब, मतलब यह कि मैं तुम्हारे मम्मी–पापा की बात कर रहा हूँ। मेरे पापा तो पेंशनर हैं। हर महीने मुझे ही कुछ न कुछ देते रहते हैं।'

रेनू का चेहरा खिल उठा और एक साँस में बोल गयी– 'ओह श्याम! मेरे जानू! कितने अच्छे हो तुम! बैठो न! बहुत थके लग रहे हो। मैं अभी कॉफ़ी बनाकर लाती हूँ।'

नीलम राकेश

बाल साहित्य की सशक्त हस्ताक्षर हैं। 23 पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। पांच पुस्तकों एवं एक बाल पत्रिका का संपादन भी किया है। दो पुस्तकें ब्रेल लिपि में भी हैं। चिल्ड्रेन बुक ट्रस्ट. नागरी बाल साहित्य संस्थान बलिया, अम्बिका प्रसाद दिव्य संस्थान, भोपाल , उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, द्वारा बाल साहित्य के लिए "सुभद्रा कुमारी चौहान स्मृति सम्मान" विद्या भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान हरियाणा, द्वारा "संस्कृति भवन साहित्य सेवा सम्मान" आदि से अलंकृत हैं. रचनाएँ विभिन्न कक्षाओं के पाठ्यक्रम में शामिल। आपके बाल साहित्य पर तीन शोधार्थियों को एमफिल की डिग्री मिल चुकी है। तीन शोधार्थी आप के बाल साहित्य पर पीएचडी की डिग्री के लिए शोध कर रहे हैं। आपके द्वारा "साहित्यांजलि तेरा तुझको अर्पण" कार्यक्रम के अंतर्गत वरिष्ठ बाल साहित्यकारों का साक्षात्कार लिया जा रहा है. जिसका साप्ताहिक प्रसारण यू ट्यूब चैनल एवं फेसबुक पर होता है।
मोबा– 8400477299,

मिलावट

25 किलो बारीक कंकड़ी, सारी दाल की बोरियों में अच्छे से डालकर उसने अपनी कमर सीधी की। प्रसन्नता से उसने दाल की बोरियों की ओर देखा । सीधा–सीधा 5,000 का मुनाफा था। अभी वह पूरी तरह खुश भी नहीं हो पाया था की परेशानहाल पत्नी गोदाम में चली आई ।

"सुनोजी, छोटू का बुखार नहीं उत्तर रहा। देखो तो कहीं ये दवा नकली तो नहींहै। आजकल इन मुनाफाखोरों का कोई भरोसा नहीं। लालच के अंधे ये, लोगों की सेहत से भी खिलवाड़ करने लगे हैं।

हे भगवान, इन्हें कड़ी सजा देना।" कहते हुए पत्नी ने दवा का पत्ता उसके हाथ में थमा दिया। वह कभी दवा के पत्ते को देखता और कभी दाल की बोरियों को ।

समाधान

वह सिर झुकाए माँ के पास बैठा था, "माँ आपसे कुछ कहना था।"

"बोलो मैं सुन रही हूँ।" निर्विकार भाव से माँ बोलीं।

"आपको सब पता तो है माँ। ये रोज़–रोज़ की किच–किच से मैं तंग आ गया हूँ। इसका कोई समाधान तो करना ही होगा ना माँ।"हिचकता हुआ सा वह बोला।

"हाँ, मैं भी देख रही हूँ। बेचारी बहू को साथ रहने में बहुत तकलीफ हो रही है। मैंने इसका समाधान भी सोच लिया है।"

"अच्छा, क्या माँ जी ?" खुशी से चहकती हुई बहू सास के बगल में आकर बैठ गई।

"शायद इसी दिन के बारे में सोचकर, तुम्हारे पिताजी, यह मकान मेरे नाम कर गए हैं। इसलिए इस

मकान में तो में ही रहूंगी। हाँ, तुम दोनों कहीं भी जाकर रह सकते हो। मुझे कोई एतराज नहीं होगा। और हाँ मेरे बारे में चिंता करने की भी जरूरत नहीं है। तुम्हारे पिताजी की पेंशन तो मुझे मिलती ही है।"

बेटा बहू हड़बड़ाए, घबराए से एक दूसरे को देख रहे थे। उनकी बोलती बंद हो गई थी।

किशोर श्रीवास्तव

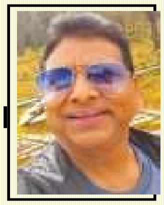

केंद्र सरकार में प्रथम श्रेणी राजपत्रित अधिकारी पद से सेवानिवृत्त। संपादक, राजभाषा विस्तारिका एवं 'समाज कल्याण'। गीत–संगीत, कविता, साहित्य लेखन,चित्र/व्यंग्य चित्रकारी, मंचीय हास्य, बच्चों के लिए कार्यशाला। अभिनय और लघु फ़िल्म निर्माण। टीवी और रेडियो के अनेक चैनलों पर कवि सम्मेलन, हास्य कार्यक्रम/इंटरव्यू आदि प्रसारित।

मो.599600313, 8447673015

जिज्ञासा

अभी साहब जी ने बुरी नीयत से कामवाली को अपनी ओर खींचा ही था कि अचानक वह इतराते हुए उनसे एक सवाल पूछ बैठी थी, 'बाबू साहब! ये मी टू–मी टू क्या होता है? पिछले हफ्ते मालकिन जी गुस्से में बार–बार यही बड़बड़ाये जा रही थीं?'

कामवाली के प्रश्न पर साहब के हाथ अचानक ढीले पड़ गए। वह उससे छिटक कर दूर जा खड़े हुए। उनका शरीर पसीने से ऊपर से नीचे तक नहा गया।

प्रॉमिस डे

प्रॉमिस डे पर उसने व्हाट्सएप्प पर उसको एक बहुत सुंदर मैसेज टाइप किया,'आज प्रॉमिस डे पर मैं तुमसे प्रॉमिस करता हूँ कि मैं तुम्हें ज़िन्दगी भर इतना प्यार करूँगा जितना कि कभी हीर ने रांझा, फरहाद ने शीरी और मजनू ने लैला को भी न किया होगा।'

उसका मैसेज पाकर वह प्रेम में भरकर गद–गद हो उठी थी। उसने उसके मैसेज में कुछ कांट–छांट करते हुए रांझा की जगह हीर, फरहाद की जगह शीरी तथा मजनू की जगह लैला कर के उसे तत्काल जवाब भी भेज दिया था। अब उसका प्रेमी भी उसके प्रेम में गद–गद था। कुछ देर तक एक–दूसरे के मैसेज पढ़ने और उसमें खोये रहने के बाद अब दोनों अपने–अपने मैसेज कॉपी पेस्ट कर–कर के आगे अपने अन्य दोस्तों को भेजने में मशगूल थे....

शशि श्रीवास्तव

कहानी,कविता,बाल साहित्य की कई पुस्तकें प्रकाशित, संपादक–हम सब साथ–साथ। कई संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत। मोबा–9013121520, 8800518246

बंटवारे का दर्द

जीवन के चारों बेटे उन्हें अपने सर–माथे पर बैठाकर रखते। उनके बेटों में माता–पिता को अपने पास रखने के लिए प्रायः आपस में झगड़ा होता। यही वजह थी कि जीवन जी और उनकी पत्नी अपने आपको धन्य समझते व सबसे कहते कि आज के ज़माने में ऐसी औलादें कहां होती हैं। वह हर किसी से अपने बेटे–बहुओं की तारीफ करते नहीं थकते।

एक दिन अचानक बड़े बेटे ने कहा, 'पिता जी क्यों न आप ये सारी जमीन–जायदाद बेंचकर अच्छी जगह पर अलग–अलग मकान सभी बेटों के लिए ले लें। जीवन जी सोचने लगे कि चलो ये ठीक रहेगा। सबके लिए अलग–अलग मकान हो जाएगा। सब अच्छे से रह भी लेंगे। उन्होंने सारी जमीन–जायदाद बेचकर अलग–अलग बेटों के लिए मकान खरीदने का मन बना लिया। जब वे इसके लिए घर से जाने लगे तो बड़े बेटे ने मां से कहा– 'आप पिताजी से कहिए कि जब मकान ले ही रहे है तो हम सब भाइयों के नाम ही खरीद लें।'

शीला ने अपने पति जीवन से कहा कि एक दिन तो सारा कुछ इन सबका होना ही है तो अभी क्यों नहीं। उन्होंने ऐसा ही किया। सारी जमीन–जायदाद बेंचकर अपने चारों बेटों के नाम अलग–अलग मकान कर दिया और जो रूपया बचा उसका भी बंटवारा कर दिया।

जैसे ही बेटों ने अपने–अपने मकान लिए उनकी नीयत ही बदल गई। अब घर तो चार थे परन्तु उनमें रहने वाले बेटों में से कोई भी अपने मां–बाप को रखने को तैयार न था। अंततः मां–बाप को वृद्धाश्रम का मुंह देखना पड़ा।

गोविन्द शर्मा

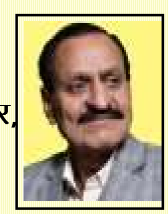

सन् 1971से निरंतर लेखन। बाल साहित्य की 38, लघुकथा की चार, व्यंग्य की दो तथा अन्य को मिलाकर 50 पुस्तकें प्रकाशित। केंद्रीय साहित्य अकादमी, राजस्थान साहित्यअकादमी, प्रकाशन विभाग,

भारत सरकार, पं. हरप्रसाद पाठक स्मृति बाल साहित्य पुरस्कार मथुरा सहित अनेक संस्थाओं से पुरस्कृत। मो–9414482280

रैम्प

उसने इस गली में मकान खरीदा। उसकी कुछ मरम्मत करवाई और घर के आगे रैंप बनवाने लगा। सामने वाले पड़ोसी ने इस पर एतराज जता दिया। दूसरे पड़ोसियों को अपने साथ मिलाने के लिए उस पड़ोसी ने कहा–यह नया बाशिंदा अपनी गाड़ी का रौब दिखाने के लिए रैंप बनवा रहा है। हम क्यों बनवाने दे। चलो ,उसे रोकते हैं।

उसने कहा क्या आप लोग चाहते हैं मैं घर में अपने पिता के साथ रहूं? यदि हां तो मुझे रैंप बनाने दे। रैंप बन गया ।

मुहूर्त का दिन आ गया। वह उसकी पत्नी बच्चे सब आ गए। घर के बाहर खड़े रहे तो एक ने पूछ लिया कि घर के भीतर क्यों नहीं जा रहे ?

पहले मेरे पिता प्रवेश करेंगे। वह गाड़ी में आ रहे हैं।गाड़ीवाले तो हर कहीं पहले पहुंचते हैं। कहां अटक गए वे ?

वे अपनी गाड़ी को चलाते हैं ।किसी की मदद नहीं लेते।

अचानक लोगों ने देखा एक प्रौढ अपनी दिव्यांगों वाली ट्राई साइकिल में बैठे उसे खुद चलाते हुए वहां आए हैं ।उन्होंने खुद ही उसे रैंप पर चढ़ाया और घर के भीतर प्रवेश किया। फिर सब घर में गए। रैंप विरोधी अब चुप थे उनमें से कुछ ने अपने माता–पिता की तरफ देखना शुरू कर दिया था।

उषा शर्मा

शिक्षा–एम० ए० (हिन्दी, संस्कृत, समाजशास्त्र) बी०एड०,अध्यापन (आर्मी पब्लिक स्कूल मथुरा) आकाशवाणी मथुरा से नियमित काव्य व कहानियों का प्रसारण। देश–विदेश की पत्र पत्रिकाओं में रचनाएं तथा 5 उपन्यास हिन्दी में 3 उपन्यास अंग्रेजी में एवं 1 कहानी संग्रह कुल 9 पुस्तकें प्रकाशित। पं.हरप्रसाद पाठक स्मृति बाल साहित्य पुरस्कार समिति मथुरा सहित एक दर्जन से अधिक संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत। मो–9997683004, 8532953835

परिवर्तन

निशा जिस ओटो से घर जा रही थी उसी में उसके सामने वाली सीट पर एक महिला भी बैठी थी। महिला के पास बहुत सारा सामान नजर आ रहा था। वह बार–बार पीछे मुड़ मुड़ कर देख रही थी।

निशा की अनुभवी आंखों ने उसकी आंखों में छुपी नमी को पढ़ लिया और धीरे से उसके हाथ पर हाथ रखकर कहा–'क्या बात है मैम, रो क्यों रही हो? कोई पीछे आ रहा है क्या जिसे मुड़ मुड़ कर देख रही हो?'

'कुछ नहीं, किसी को भी नहीं।'–एक छोटा सा उत्तर देकर वह चुप हो गई।

'क्या नाम है आपका?'– निशा ने उसे कुरेदा। उसने नजर उठा कर निशा की ओर देखा।

'मेरे और आप के सिवा यहाँ और कोई हमारी बात नहीं सुन रहा। आप चाहें तो अपने मन की पीड़ा मुझे बता कर अपना मन हलका कर सकती हो। शायद मैं आपकी कुछ सहायता कर सकूं।'

उसके हाथ के स्पर्श से उस औरत का दिल भर आया और वह रोते हुए बोली– 'मेरी कोई मदद नहीं कर सकता।'

निशा ने पूछा–'ऐसा आपको क्यों लगता है?'

'क्योंकि मैं एक औरत हूं। आप जानती हो औरत क्या होती है? औरत पति को तब तक अच्छी लगती है जब तक वह उसके बिस्तर की शोभा बनी रहे। चुप रह कर सब कुछ सहन करती रहे।'

' नहीं ऐसा नहीं है।' – निशा ने दृढ़ता से कहा तो वह निशा के मुंह की ओर देखने लगी।

' फिर कैसा है? '– आश्चर्य से उसने देखा।

'जब तक आप पुरानी पौगापंथी से जुड़ी रहोगी तब तक अपनी स्थिति के लिए आप स्वयं जिम्मेदार हैं। आज औरत मैथिलीशरण गुप्त जी की वह अबला नारी नहीं है जिसके आंचल में दूध और आंखों में आंसू हुआ करते थे। आज औरत कल्पना चावला है, प्रतिभादेवीसिंह पाटिल है, पी टी उषा है, आनन्दी बेन पटेल है और और................।'

'बस बस दीदी, मैं आपकी बात समझ गई।'– कहते हुए उसने पल्लू से अपने आंसू पौछे और ऑटो को उसी दिशा में मुडवा दिया जिधर से वह आई थी। उसके चेहरे की दृढ़ता और भाव बहुत कुछ बता रहे थे।

शराफत अली खान

जन्म–01–02–1958

शिक्षा–एम.ए. (समाज शास्त्र, हिंदी), उ.प्र.वन विभाग से 2018 में क्षेत्रीय वनअधिकारी पद से सेवा निवृत्त। स्वतंत्र लेखन। मो. 7906849034

सह–अस्तित्व

किसी के बहकाने पर एक दिन पेड़ ने पत्तों से कहा–'तुम बहुत घमंडी हो गए हो और यह भूल गए हो कि तुम्हारा अस्तित्व मेरी कृपा पर निर्भर है।'

पत्ते कुछ देर खामोश रहे। फिर बोले–' नहीं, ऐसा नहीं है। हमारे बिना आपका अस्तित्व भी अधूरा है। यदि आप असहमत हैं तो हम आपसे अलग हो रहे हैं।' इतना कहकर पत्ते एक–एक करके पेड़ से गिर पड़े।

काफी समय गुजर गया। जब पेड़ पर पत्ते नहीं रहे तो उस पेड़ को सूखा जानकर जड़ से काट दिया गया।

डॉ.अमिता दुबे

प्रधान सम्पादक
शिक्षा–एम.ए. (हिंदी,अर्थशास्त्र),एल–एल बी,पी–एच.डी.।8 कहानी संग्रह, 13 समालोचना की पुस्तकें, 2 बालसाहित्य की पुस्तकें तथा 2 उपन्यास, 3 कविता संग्रह, एवं 5 समीक्षा पुस्तक सहित कुल 33 पुस्तकें प्रकाशित। चार कृतियां पुरस्कृत, साथ ही विभिन्न संस्थाओं द्वारा 7 दर्जन से अधिक बार सम्मानित/पुरस्कृत।
मो. 7906849034

भगवान का रूप

व्यवस्थित जीवन शैली के अभ्यासी डॉ. सुदीप को सेवानिवृत्त हुए दश वर्ष हो गये थे। चिकित्सकीय कार्य को उन्होंने पेशे के लिए नहीं अपनाया था वरन शिक्षा पूर्ण करते समय ली गई शपथ को अपने जीवन में आत्मसात किया था। सरकारी सेवा में रहते हुए भी उनकी लोकप्रियता चारों ओर फैली थी। उनके साथ कार्य करने वाले अधिकांश लोग उनकी कार्यशैली से त्रस्त रहते थे।

सेवानिवृत्ति के बाद उन्होंने अपनी क्लीनिक खोल ली थी। पत्नी के अनुसार जब से वह क्लीनिक पर बैठने लगे थे तब से और अधिक चुस्त–दुरुस्त हो गये थे।

किसे पता था कि जीवन में ऐसा समय भी आयेगा जब किसी से मिलना–जुलना अत्यन्त खतरनाक हो जायेगा। किसी मरीज के सम्पर्क में आने के कारण वह भी कोरोना पॉजीटिव हो गये और कोरोना वार्ड में भर्ती होना पड़ा।

धीरे–धीरे स्वास्थ्य लाभ करते हुए डॉ. सुदीप ने सुना कि आई.सी.यू. में एक मरीज ऐसा आया है जिसे वेंटीलेटर पर रखा जाना तत्काल आवश्यक है लेकिन वहाँ उपस्थित कोई भी डॉक्टर नली डालने में दक्ष नहीं है। विशेषज्ञ डॉक्टर की प्रतीक्षा की जा रही है, उधर मरीज की सांसें उखड़ रही हैं।

डॉक्टर सुदीप अपनी अस्वस्थता भूलकर उस मरीज के ऊपर झुक गये। आई.सी.यू.में ड्यूटी कर रहे कभी डॉक्टर सुदीप के जूनियर रहे डॉक्टर तन्मय को वह भगवान का रूप ही लगे।

ब्याज का मोह

एक लम्बे समय से अकेले रहते–रहते श्रीमती प्रभा का काम करने का अभ्यास ही छूट गया था। बच्चे बाहर थे और पति का साथ काफी पहले ही छूट गया था।

लॉकडाउन की घोषणा के बाद 26 मार्च 2020 को आने वाली अंतिम उड़ान से पुत्र,पुत्र–वधु और पोता सजल वापस भारत आ गये थे। पुत्र और पुत्र–वधु दोनों की कम्पनी से वर्क फाम होम की व्यवस्था हो गई थी।

जब दोनों अपने–अपने काम पर जाते थे तो उस दौरान नन्हा सजल बालग्रह में रहता था। पूर्णबन्दी के बाद वर्क फाम होम के बीच सजल को सम्भालना दोनों के लिए कठिन हो रहा था इसलिए दोनों कानपुर आ गये थे।

श्रीमती प्रभा खुश थीं क्योंकि शादी के बाद पहली बार पुत्र और पुत्रवधु इतने दिनों तक उनके साथ रहने वाले थे। परन्तु यह क्या, घरेलू सहायकों के अभाव में पुत्रवधु अनुपमा की व्यस्तता और पोते सजल की चंचलता उन्हें थका रही थी। घर का काम करने की उनकी आदत खत्म सी हो गई थी फिर भी पोते सजल की बालसुलभ क्रीड़ाएँ और तोतली बोली उनके मन को लुभाकर उन्हें चुस्त–दुरुस्त बनाये हुए थी जो मूलधन से ब्याज के प्रिय होने का सबूत प्रस्तुत कर रही थी।

अशोक कुमार बंसल

चर्चित नाम– अशोक अश्रु
शिक्षा– एम.ए, एल.एल–बी
संप्रति––1976 से आगरा में अधिवक्ता के रूप में कार्यरत। कई गद्य, पद्य की पुस्तकें प्रकाशित, कई पुस्तकों का सम्पादन, विगत पाँच वर्ष से संस्थान संगम मासिक पत्रिका का संपादन
मो.9870986273, 9219539294

जन्मदिन

अनुज एक बर्थडे–पार्टी में जा रहा था। अनुज ने राकेश से अपने साथ चलने का आग्रह किया। जिसे राकेश इंकार न कर सका।

अनुज अपने आनंद अंकल के यहाँ राकेश को लेकर पहुंचा। जब तक वहाँ काफी अतिथि आ चुके थे। डेक पर राष्ट्रभक्ति के गीत बज रहे थे। वातावरण में चंदन की सुगंध घुली हुई थी। अनुज ने आनंद अंकल एवं आंटी से राकेश का परिचय कराया। राकेश वहाँ पर काफी महानुभावों से मिला, लेकिन उसकी आँखें उस शख्स को ढूंढ रहीं थीं, जिसका आज जन्मदिन था।

कुछ समय बाद सभी अतिथि एवं आनंद अंकल एवं उनके परिजन बाहर गार्डेन की तरफ चल दिये। गार्डन को विद्युत बल्बों एवं झालरों से सजाया गया था। चांदनी में फूलों की गंध मन को मोह रही थी। सभी लोग गार्डेन के बीच में लगे अमलतास के वृक्ष के पास जाकर रुक गए। उस वृक्ष के चारों ओर दीपक बल रहे थे। वहीं एक बड़ा सा केक रखा हुआ था। राकेश को वहाँ जानकारी हुई कि आनंद अंकल का पुत्र रोहित कारगिल युद्ध में शहीद हो गया था।. अपने पुत्र रोहित की याद में, उसके जन्म दिवस पर आनंद अंकल ने यह अमलतास का वृक्ष लगाया था। अब इस वृक्ष को वह अपना पुत्र रोहित मानते हैं और प्रतिवर्ष इसी तरह उसका जन्मदिन मनाते हैं।

डॉ.शील कौशिक

हरियाणा साहित्य अकादमी से पुरस्कृत व श्रेष्ठ महिला रचनाकार सम्मान सहित देश के 13 राज्यों से सम्मानित। साहित्य की विविध विधाओं में 23 पुस्तकें प्रकाशितं। इनके साहित्य पर दो पीएचडी तथा 6 लघु शोध प्रबंध लिखे जा चुके हैं।

मोबा– 9416847107

बदलती प्रश्नावली

स्वाति अब सातवीं कक्षा में आ गई है। उम्र बढ़ने के साथ ही उसके शरीर में अब बदलाव आने लगे हैं।

स्कूल से लौटने पर मम्मी का पहले की भांति उससे प्रश्न पूछना अब भी जारी है...

'क्या स्कूल के टॉयलेट में गई थी?'

कोई शिक्षक तुम्हारा हाथ तो नहीं पकड़ता?

अकेले में तो नहीं बुलाया...

कोई तुम्हारी तरफ घूरता तो नहीं...

किसी से तुम खाने की चीजें तो नहीं लेती हो. ..

वैन का ड्राइवर तुम्हें छूने का प्रयास तो नहीं करता.

''ये मम्मी को क्या हुआ है अब? पहले तो कभी ऐसे प्रश्न नहीं पूछती थीं...''स्वाति की झुंझलाहट बढ़ गई। कभी वो समय था, जब मम्मी रसोई में रोटियाँ बेलते हुए प्यारे, परवाह भरे, मजेदार, मेरे मनपसंद प्रश्न पूछती थीं...

'बेटा, लंच में आज मैंनें बर्गर रखा था, अच्छा लगा न, खाया भी या बांट दिया? म्यूजिक पीरियड में क्या किया? कौन–कौन से गेम खेले? आज आर्ट्स एंड क्राफ्ट के पीरियड में क्या बनाया? होमवर्क पूरा न करने पर किसी ने डांटा तो नहीं? स्वाति आज तेरे प्यारे दोस्त निशान्त से झगड़ा तो नहीं हुआ?

'क्या मम्मी! आप भी न, कितना ख्याल रखती हो मेरा'– कह कर स्कूल से लौटने के बाद कंधे से स्कूल बैग उतारते ही मैं झट से मम्मी के गले लग जाती थी। जब कभी मम्मी प्रश्न नहीं पूछती थीं, तो मैं खुद शुरू हो जाती थी, आज मैंने ये किया... वो किया... आज तो मम्मी निशांत को मैंने चपेट मार दी, बड़ा समझता था अपने–आप को...वह यूनिफार्म बदलने कमरे में जाने लगी।

मम्मी की प्रश्नावली जारी थी,–'कोई तुम्हारी अत्यधिक प्रशंसा तो नहीं करता...।'

आखिरी प्रश्न पर स्वाति सचेत हो गई...उसकी सांसें अटक गई, – 'भाटी सर...'

कंधे से बैग पटक कर, बिना यूनिफॉर्म बदले वह दौड़ी आई और फिर से मम्मी के गले लग गई।

विकेश निझावन

देश की लगभग सभी स्तरीय पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित। कहानी, कविता तथा उपन्यास की तीस पुस्तकें प्रकाशित । दो कहानी संग्रह तथा एक कविता संग्रह हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत । हाल ही में हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा दो लाख रुपए का लाला देश बन्धु गुप्त सम्मान प्राप्त विभिन्न भाषाओं में रचनाओं का अनुवाद। राष्ट्रीय स्तर पर अनेक पुरस्कार व सम्मान प्राप्त। पिछले 12 वर्ष से साहित्यक पत्रिका पुष्पगंधा का सम्पादन । मोबा–8168724620

शोक सन्देश

रमाकांत जी की अकस्मात मौत पूरे परिवार को हिला गई। गली मुहल्ले में जिसने भी सुना, आंखें भर आई। ऐसे सज्जन व्यक्ति का चले जाना,,,,, छोटे छोटे तीन बच्चे,,,,

एक अच्छा शिक्षक होने के नाते शहर भर में नाम था। जाने कितनी संस्थाओं से जुड़े हुए थे। क्रिया रस्म वाले दिन भीड़ उमड़ पड़ी श्रध्दांजली देने वालों की । अनेक संस्थाओं द्वारा शोक सन्देश आए ।

भीड़ छंट गयी तो मां बेटे से बोली, कितने शोक संदेश आए तेरे पापा के लिए। कितनी पहचान थी नगर भर में ।

बेटे को खामोश देख मां बोली, तूने सभी

संदेश सुनें थे ।

नहीं मां, मुझे तो वे पढ़े संदेश सुनायी ही न दिए । मुझे तो उस बूढ़े व्यक्ति का संदेश सुनाई दे रहा था, जो लाठी टेकता भीतर आया था,,,,,और भीड़ में सबसे पीछे बैठा अपने आंसू पोंछ रहा था ।

कीर्ति श्रीवास्तव

आठ वर्षों से मासिक पत्रिका 'साहित्य समीर दस्तक' का सम्पादन कर रही हैं। आपकी आठ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। दक्षिण भारत के कर्नाटक पाठ्यपुस्तक निगम के पाठ्यक्रम में कक्षा 4 एवं 7 हेतु आपकी बाल कहानी 'स्वच्छता का पाठ', 'पेड़ लगाओ' शामिल की गई है। दक्षिण भारत के कर्नाटक राज्य 'अक्कमहादेवी महिला विश्वविद्यालय', विजयपुर के बी.ए. बी.एस. डब्ल्यू तृतीय सत्र के पाठ्यक्रम में हिंदी (अनिवार्य) विषय में कविता 'हमारी संस्कृति' शामिल। मोबा– 07415999621

देशद्रोह

'क्या बात है गिरीश? दुकान में इतने उदास क्यों बैठे हो?'

'क्या कहूँ बड़े बाबू, पूरे शहर में अब कोई ऐसी जगह नहीं बची है जहाँ मॉल्स न खुले हों।'

'तो क्या हुआ? तुम्हें क्या परेशानी है?'

'बड़े बाबू, इन मॉल्स की वजह से हमारी छोटी–मोटी दुकानों पर कोई आता ही नहीं है। सभी को मॉल की चकाचोंध भाती है। अब तो बीबी, बच्चों को पालना भी दूभर होता जा रहा है।'

'ये तो सही है। वो दिन तो हवा हो गए जब हम थैला लेकर बाजार जाते थे। पर ग्राहक भी क्या करें तुम लोग कितना महंगा सामान बेचते हो और वहाँ अच्छा और सस्ता मिल जाता है।'

'साफ भी रहता है। और तो और जब कोई आपदा आती है तो मौके का फायदा उठाकर तुम लोग सामान के दाम तीन गुना बड़ा देते हो। कम से कम वहाँ ऐसा तो नहीं होता।'

'तो क्या मैं अकेले करता हूँ सभी तो करते हैं। क्या सब्जी वाले हों क्या टेक्सी वाले।'

'हाँ, यही तो रोना है। यदि तुम लोग उचित दाम में और साफ सामान बेचो तो क्यों कोई वहाँ जाएगा। खासकर गरीब आदमी। एक बात न भूलो गिरीश जब एक उंगली सामने वाले पर उठाते हो तो बाकी की तीन उंगली तुम्हारे पर भी उठती है। मौके का फायदा उठाना किसी देशद्रोह से कम नहीं होता।'

डॉ० विष्णु शास्त्री 'सरल'

विभिन्न विधा की 06 पुस्तकें प्रकाशित। अनेक साहित्यिक एवं सामाजिक संस्थाओं द्वारा सम्मानित – पुरस्कृत। मोबा – 9411347934

सम्बन्धों की छाया

सेवानिवृत्ति के कुछ साल बाद सोमनाथ वृद्ध हो चले थे। दो बेटों की अच्छी खासी नौकरी, घर में बहुएँ और पोते सभी थे किन्तु उनकी पत्नी दो साल पूर्व ही इस संसार से सदा के लिए विदा हो गई थीं।

अब घर में उनकी कम सुनी जाती थी। वे स्वाभिमानी प्रवृत्ति के थे। स्थिति को भाँपकर उनके दामाद ने उन्हें स्नेह – सम्मान के साथ अपने घर चलने का आग्रह किया।

सोमनाथ भी खुशी–खुशी वहाँ चल दिये। दो तीन दिनों तक विवाहिता पुत्री ने पिता की पर्याप्त सेवा की और उनके मन पसंद का भोजन भी बनाकर स्नेह पूर्वक खिलाया लेकिन धीरे–धीरे पिता उसे भार स्वरूप प्रतीत होने लगे। तब शीघ्र ही पुत्री उन्हें अपने मायके के घर में छोड़ आई। सोमनाथ को संबंधों की छाया सिमटती हुई महसूस हुई।

कान्ता रॉय

जन्म–20 जुलाई 1969, कोलकाता शिक्षा–बी.ए.,ग्राफिक्स डिजाइनर, डिप्लोमा इन डीटीपी। लेखन की विधाएँ–लघुकथा, कहानी,गजल–कविता और आलोचना। तीन पुस्तकें प्रकाशित,7 लघुकथा संकलन और 3 पत्रिकाओं का संपादन किया है। सम्प्रति–प्रशासनिक अधिकारी, मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति,हिंदी भवन,भोपाल। निदेशकः–लघुकथा शोध–केंद्र भोपाल। प्रधान सम्पादक–लघुकथा वृत्त, मासिक,संस्थापक– अपना प्रकाशन, मो.9575465147

अस्तित्व की यात्रा

उसका अपना साथी जो उसके मुकाबले अब अधिक बलिष्ठ था, उसको शिकार करने के उद्देश्य से घूर रहा था। देखकर उसका हृदय काँप गया।

वह सहमती हुई उन दिनों को याद करने लगी जब दोनों एक साथ शिकार करते, साथ मिलकर लकड़ियाँ चुनकर लाते, आग सुलगाते, माँस पकाते, साथ मिल–बांटकर खाते। सहवास के दौरान एक दूसरे का बराबरी से सम्मान भी करते थे।

दरअसल तब वे दोनों असभ्य, अविकसित जीव थे, शिकारी होकर भी सम्बंधों को परिपूर्णता से जिया करते थे।

वह याद करती है उस दिन को जब उसके गर्भवती होते ही दूसरे ने उसके लिए घर बनाने का सोचा था। प्रसवित जीव को केन्द्र में रखकर दोनों ने उस वक्त अपने लिए कार्यक्षेत्र का विभाजन किया था। उसके बाद से वह प्रसवित जीव की देखभाल करने के लिए घर में रहने लगी और शनैः शनैः कोमल शरीर धारण करने लगी थी। उसे कहाँ मालूम था कि समय बीतने पर इन्हीं बातों के कारण वह स्त्री कहलाएगी।

उसके शिकार को उद्दत अपने साथी की बलिष्ठ भुजाओं की ओर उसने पनियाई आँखों से देखा, फिर अपनी कोमल और कमजोर शरीर पर नजर फेरी। वह ठिठकी, दूसरे ही क्षण उसकी आँखों में कठोरता उतर आयी थी।

वह प्रसवित जीव को अपने साथ ले, घर से बाहर शेरनी बनकर फिर से स्वयं के पोषण के लिए शिकार करने निकल पड़ी।

वह अब स्त्री नहीं कहलाना चाहती थी।

बैकग्राउंड

'ये कहाँ लेकर आये हो मुझे?'

'अपने गाँव, और कहाँ!'

'क्या, ये है तुम्हारा गाँव?'

'हाँ, यही है, ये देखो हमारी बकरी और वो मेरा भतीजा।'

'ओह नो, तुम इस बस्ती से बिलाँग करते हो?'

'हाँ, तो?'

'सुनो, मुझे अभी वापिस लौटना है!'

'ऐसे कैसे वापस जाओगी? तुम इस घर की बहू हो, बस माँ अभी खेत से आती ही होगी।'

'मै वापस जा रही हूँ! सॉरी, मुझसे भूल हो गई। तुम डॉक्टर थे इसलिए ....।'

'तो ....? इसलिए क्या?'

'इसलिए तुम्हारा बैकग्राउंड नहीं देखा मैने।'

****

बहुत छोटे आकार की रचना से बड़ा अर्थ ध्वनित होकर पाठक की चेतना में हलचल मचा दे—गाागर में सागर का यही अर्थ है।

*नासिरा शर्मा

****

कमलेश भारतीय

जन्म—17 जनवरी, 1952 (होशियारपुर) वरिष्ठ लघुकथाकार एवं पत्रकार। मूल रूचि कथा व लघुकथा में। दैनिकट्रिब्यून से प्रिंसिपल रिपोर्टर के बाद हरियाणा ग्रंथ अकादमी के उपाध्यक्ष का कार्यभार निभाया। पांच लघुकथा संग्रह और सात कथा संग्रह प्रकाशित। मोबा—9416047075

बहुत दिनों बाद

बहुत दिनों बाद अपने छोटे से शहर गया था। छोटे भाई के परिवार में खुशी का आयोजन था। बीते सालों में यह पहला ऐसा मौका था जब मैं वहां पूरी फुर्सत में रूका था। मैं अपने शहर घूमने निकला या शायद बरसों पुरानी अपनी पहचान ढूंढने निकल पडा। अपना चेहरा खोजने निकल पडा।

पांव उसी छोटी सी गली की ओर चल पडे जहां रोज शाम जाया करता था। वही जिसे पा सकता नहीं था लेकिन देख आता था। कुछ हंसी,कुछ मजाक और कुछ पल। क्या वह आज भी वहीं ,,,? कितना भोलापन? कैसे वह वहां हो सकती है? घर तक पहुंच गया। मेरेसपनों का घर। उजडा सा मोहल्ला। वीरान सा सब कुछ। खंडहर मकान। उखडी ईंटें।

क्या बरसों बाद प्यार का यही असली रूप हो जाता है? क्या प्रेमिका का चेहरा किसी खंडहर में खोजना पडता है? क्या प्रेम बरसों में कहीं खो जाता है? नहीं। खंडहरों के बीच बारिशों के चलते कोई अंकुर फूट रहा था। शायद प्रेम यही है जो फूटता और खिलता ही रहता है ,,,खंडहरों के बीच भी ,,,मैं कभी यहांसे कहीं गया ही नहीं ,,,सदा यहीं था ,,,तुम्हारे पास ,,,

उपहार

सुबह का समय। अभी धूप आंगन में पसरी नहीं है। सूरज बादलों की ओट से ऊपर उठने की कोशिश में। पत्नी ने झाड़ूउठाई और आंगन में बिखरे फूलों की ओर देखकर उलाहना देते कहा—पड़ोसियों केपेड़ से फूल हमारे आंगन में बिखर जाने से सुबह—सुबह झाड़ू न लगाओ तो बुरा लगता है। इन्हें कहिए न कि इस पेड़ को कटवा डालें।

मैंने हँस कर इतना ही कहा—'कितने अच्छे पड़ोसी हैं जो सुबह—सुबह हमारे आंगन में उपहार के तौर पर फूल बिखेर देते हैं। वरना तो पड़ोसी कब , कितने कांटे बो दें, कौन रोक सकता है?'

पत्नी भी झाड़ू लगाते सारा दर्द भूल मुस्कुरा दी।

– अंजना छलोत्रे 'सवि'

शिक्षा–एम.ए.(अर्थशास्त्र,हिंदी) एम.जे. पत्रकारिता।विधाएँ–कहानी,कविता,लेख, लघुकथा, फीचर, रेडियो, बालसाहित्य, हास्य व्यंग्य, उपन्यास.। कहानी,कविता, लघुकथा, व्यंग्य, उपन्यास आदि की 14 पुस्तकें प्रकाशित। मोबा–8461912125

कर्म प्रधान

हेड ऑफिस से इस खबर के साथ ही गाज गिरी। छटनी का आदेश आते ही हर कर्मचारी कि धड़कन बढ़ गई। अभी नौकरी बचाने की जुगत बैठाने लगे, पूरे आफिस में जगह–जगह झुंड़ में खड़े होकर सहकर्मी चर्चा में मशगूल हैं। नई जगह नौकरी मिलना आसान तो है ही नहीं, दूसरा मसला है कि टेक्नोलॉजी में सभी तो अपग्रेट नहीं है। यह एक ऐसा धमाका है जिसे सभी चाह रहे हैं कि झूठ हो, वहीं अंदर ही अंदर अनिश्चितता घबराहट पैदा कर रही है। जो लोग पुराने है उन्हें जब इतना खौफ है तो जो साल, छह माह पहले लगी नौकरी वालों के हाल के तो क्या ही कहने।

नक्षत्रा को भी नौकरी में लगे मात्र आठ माह ही हुए हैं। वह तो अपने काम से काम रखती है ऐसे में भी वह मूल्यांकन करने लगी, क्या–क्या कमियाँ है उसमें, जिसके तहत उसे निकालने की पूरी पुख्ता व्यवस्था होगी। एक तो नक्षत्रा खूब छुट्टी लेती है, उसपर ऑफिस की कार्यशैली में हमेशा गड़बड़ी करती रहती है, उसपर सहकर्मियों के साथ रुखा व्यवहार करती है, यह सब सोच–सोच कर नक्षत्रा का ह्दय कांपने लगा, उसे अपने में ढेर सारी कमियाँ नजर आने लगीं, सीनियर तो चाहेंगे कि उसका पत्ता कट जाए।

नक्षत्रा ऐसा क्या करें कि यह नौकरी बची रहे, ऑफिस के सभी छोटे–बड़े कर्मचारी बड़े साहब के घर बारी–बारी से मिल आये हैं।

नक्षत्रा ही है जो अभी तक बड़े साहब से मिलने नहीं गई। अब नक्षत्रा को अपनी अकड़ पर कोफ्त हो रही है, लेकिन वह करें भी क्या, उसको चापलूसी और द्विअर्थी भाषा में की गई बातें कभी पसंद नहीं आतीं। कभी कोई कुछ कहता भी है तो दो टूक जवाब दे देती हैं। नक्षत्रा के मुँहफट होने से सहकर्मी भी भरे बैठे रहते हैं कि नक्षत्रा कोई गलती करे तो आड़े हाथों ले। कई बार नक्षत्रा सहकर्मियों के कोप का भाजन बन चुकी है।

इस समय पूरा ऑफिस अपनी–अपनी जुगाड़ लगाने में लगा है और सभी अपनी रोजी बचाने के लिए किस तरह अपने सीनियर को खुश करने में लगे हैं।

नक्षत्रा आठ दिनों से मानसिक उथल–पुथल के बाद पस्त हो गई, और दहशत में सोचा नहीं जा रहा, जो होना होगा वह तो होकर रहेगा ही, फिर क्यों चिंता करें, जब तक इस आफिस में है तब तक मन लगाकर काम करें, आगे देखा जायेगा।

नक्षत्रा ने उस समय नौकरी की अनिश्चितकालीन परिणाम की परवाह न करते हुए भी ठान लिया कि वह मन लगाकर काम करेगी, उस समय जब किसी का मन काम में नहीं लगा रहा है।

नक्षत्रा ने काम करने के साथ मन लगा कर पूरा भी करती जा रही है, और अपने टेवल की सारी फाइलें निपटाती रही, काम में ऐसी रमी कि छंटनी होने का डर काफूर हो गया।

बड़े और ओहदेदार पद के अधिकारी और नेता जो अपने को सीनियर कहते थे निकाल दिए गए, नक्षत्रा की लगन और मेहनत ने उसे छंटनी से तो बचाया ही बल्कि नक्षत्रा नौकरी में तरक्की दर तरक्की पाती चली गई। कर्म प्रधान सफल होते हैं, और गप्पप्रधान ज़्यादा दिन टिकते नहीं।

विजय कुमार

प्रतिष्ठित पत्रिका 'शुभ तारिका' मासिक के सह–संपादक। लघुकथा संग्रह 'जन्मदिन' हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला केआर्थिक सहयोग से प्रकाशित। कई संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत। पश्चिम बंगाल राज्य द्वारा तीसरी कक्षा के पाठ्यक्रम में इनकी लघुकथाएं ली गई हैं। लघुकथाओं का कई भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। आकाशवाणी शिलांग से रचनाएं भी प्रसारित होती रही हैं। मोबा–9813130512

अपना हिस्सा

"यार, यह सुमेश को डायबिटीज है फिर भी अपने हिस्से का मीठा लेना नहीं छोड़ता। देख अभी भी रसगुल्ला और बर्फी के दोनों पीस उठा कर चुपचाप अपने बैग में रख लिए हैं।" विनोद की नजर सुमेश पर ही टिकी हुई थी।

"बच्चों के लिए रख रहा होगा, हमने क्या लेना", मैंने कहा, "तू अपना खा–पी और पार्टी का मजा ले।"

"इसके कौन से छोटे–छोटे बच्चे हैं, जो एक–दो

पीस में बहल जाएंगे", विनोद कहने लगा, "देख, अब तो समोसा भी रख लिया। बड़ा कंजूस किस्म का है भई। जो खाया नहीं जाता वह तो सभी छोड़ देते हैं मेज पर ही। पर यह कभी नहीं छोड़ता। पता नहीं क्या करता है घर ले जाकर।"

"तो क्यों छोड़े भई। उसके हिस्से की चीज है, जो मर्जी हो करे", मैंने कहा, "तेरा भी ध्यान बस इन्हीं चीजों में रहता है।"

"वह देख, वह लेकर कहीं जा रहा है सारा समान। चल आ देखें, क्या करता है?" विनोद ने जासूसी भरे अंदाज से कहा।

"छोड़ ना यार।" मैंने टालते हुए कहा।

"चल ना यार....।" कह कर वह मुझे लगभग घसीटते हुए अपने साथ ले गया।

थोड़ी देर बाद हमने देखा कि वह खाने–पीने का सामान गेट पर खड़े दो बच्चों को पकड़ा रहा था, जो पास ही की झुग्गी–झोपड़ियों में रहते थे, और वहीं आस–पास खेलते रहते थे।

'अपने हिस्से का उपयोग इस तरह भी किया जा सकता है।'–देखकर विनोद के मुँह से बस इतना ही निकला–'वाह!'

आशा शैली

सम्पादक शैलसूत्र (त्रैमासिक) लेखन –हिन्दी, पंजाबी, पहाड़ी एवं उर्दू आदि भाषाओं में, आकाशवाणी एवं दूरदर्शन पर कार्यक्रम प्रसारण। विभिन्न विधाओं की 28 पुस्तकें प्रकाशित। तीलू रौतेली (उत्तराखण्ड राज्य पुरस्कार–2016)ग्लोबल लिटरेरी सम्मान, मरवाहा फिल्मस् नोयडा (दिल्ली 2016)पंकस अकादमी जालन्धर द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय आधी दुनिया अवार्ड (2019), शिल्पी चड्ढा सम्मान बाल उपन्यास कलकत्ता से अण्डमान तक को (2020)

मोबा–7055336168

धरना और खेत

पीठ पर गोबर का किल्टा लिए खेत की चढ़ाई चढ़ते रामी की नज़र बगीचे में सेब के पेड़ के चारों तरफ़ गोबर फैलाते पति पर जा अटकी। पीठ के बोझ और पहाड़ की चढ़ाई के बावजूद उसकी चाल तेज हो गई।

बगीचे में उसका पति अकेला नहीं था। उसके पास वह नेता भी खड़ा था जो हर बार पंचायत प्रधान का चुनाव लड़ते–लड़ते बूढ़ा हो रहा था पर जीता कभी भी नहीं।

जब से किसान आन्दोलन चला है, तीन बार आ कर उन से चन्दा ले गया था और हर बार आन्दोलन में दिल्ली चलने की हठ भी करता था। मान लिया कि इस साल सेब की फसल अच्छी हुई थी पर यह तो हमारी मेहनत की कमाई है, कहीं से दान तो नहीं मिला।

स्कूल खुलते ही नयी क्लासें लगेंगी, बच्चों के कपड़े, किताबें, वर्दियाँ और भी दुनिया भर के खर्चे। इसी फसल पर सारा दारोमदार है और ये नेता जी?

इनकी अपनी दुकान अलग से चलती है जहाँ इनकी मैडम बैठती हैं। दो–दो बेटे अफसर हैं, बगीचा लाखों रुपये साल के देता है। काला सफेद पता नहीं क्या–क्या दबा रखा है। ले–देकर हम गरीबों के पीछे पड़े रहते हैं। सोचते–सोचते रामी दोनों के पास पहुँच गई। नेता जी कह रहे थे,–"देख बीरू! हम लोग जो लड़ाई लड़ रहे हैं वह तुम जैसे किसानों के हित में ही है। मैं तो अभी भी कह रहा हूँ। लड़ाई लम्बी चलेगी। तुम भी दिल्ली चलो और धरने पर बैठो। इस सरकार को तो उखाड़ कर फेंक ही देंगे। कल जब हम लड़ाई जीत जाएँगे, तब तुम्हें दुख होगा कि तुम ने इतना अच्छा मौका गंवा दिया।"

"धम्म!" रामी ने झुक कर किल्टे का गोबर पेड़ के नीचे डाला तो नेता जी ने पलट कर देखा। रामी पर नज़र पड़ते ही जनवरी की सर्द हवा में भी माथे पर पसीना आ गया। रामी दोनों हाथ कमर पर टिकाये खा जाने वाली नज़र से अपने पति को घूर रही थी और वह अपनी हँसी छुपाने के लिए दूसरी ओर देखने लगा।

"मैं चलता हूँ बीरू! फिर आऊँगा।" नेता जी ने खिसकने में ही भलाई समझी पर रामी उनके सामने जा खड़ी हुई,

"नेता जी! हर बार आपको चन्दा यह सोचकर देते रहे कि आप शायद कोई अच्छा काम कर रहे हैं। पर आप यह मत भूलिए कि हिमाचल अब पढ़ा लिखा है। हम भी सब कुछ जानते हैं कि यह किसान आन्दोलन में क्या हो रहा है। सरकार गिराने तक तो बात सहन की जा सकती है, पर आपके धरने पर बैठे नेता तो देश तोड़ने की बात कर रहे हैं।"

रामी गुस्से में बिफर रही थी, "सारे रास्ते बर्फ़ से ढके हुए हैं। हम किसान इतनी कड़ाके की ठंड में खेतों में गोबर डाल रहे हैं, ताकि आने वाले साल भी हमारी फसल अच्छी हो। हमको नहीं लड़ना चुनाव। और आप? एक बार तो जीतकर दिखा दो। खबरदार जो

मेरे आदमी को दिल्ली ले जाने की सोची।

चलो। यह भी मान लेती हूँ। मेरे सारे बगीचे में गोबर डाल दो। कटिंग और सप्रे; दवा का छिड़काव कर दो। हम दोनों बस देख भाल करते रहेंगे। काम खतम होने पर मैं भी चलती हूँ आपके साथ दिल्ली। बच्चे और मेरे पशु आपकी घरवाली देख ही लेगी। इतनी कुरबानी तो आप करेंगे ही।"

नेता जी बिना कुछ बोले खेत की उतराई उतर रहे थे औरबीरू आराम से बैठा बीड़ी फूंक रहा था।

अनुराग शर्मा

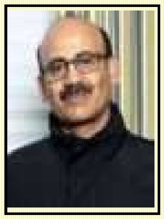

पिट्सबर्ग (अमेरिका) निवासी अनुराग शर्मा एक लेखक,सम्पादक, शिक्षक,किस्सागो, कवि, और विचारक हैं उनकी कथाएँ पाठकों को अपनी अंतिम पंक्ति तक बांधे रहने में सक्षम हैं। उनकी कहानियाँ पढ़ते हुए अक्सर पाठक को निजी संस्मरण की अनुभूति होती है। एक पूर्णतः अप्रत्याशित अंत उनके कथा लेखन की विशेषता है।

मोबा– +1 412 692 1362

क़ौमी एकता

'अस्सलाम अलैकुम पण्डित जी! कहाँ चल दिये?'

"अरे मियाँ आप? सलाम! मैं ज़रा दुकान बढा रहा था। मुहर्रम है न आज!"

'तो? इतनी जल्दी क्यों? तुम तो रात–रात भर यहाँ बैठते हो। आज दिन में ही?'

"क्या करें, बड़ा खराब समय आ गया है। आपको पता नहीं पिछली बार कितना फ़जीता हुआ था? और फिर आज तो तारीख भी ऐसी है।"

'अरे पुरानी बातें छोड़ो पण्डित जी। आज तो आप बिल्कुल बेखौफ़ बैठो। मैं यहीं हूँ।'

"मियाँ, पिछली बार आपके मुहल्ले का ही जुलूस था जिसने आग लगाई थी।"

'मुआफ़ी चाहता हूँ पण्डित जी, तब मैं यहाँ नहीं था, इसीलिये ऐसा हो सका। अब मैं वापस आ गया हूँ, सब ठीक कर दूँगा।'

"अजी आपके होने से क्या फ़र्क पड़ेगा? कहीं आपकी ही इज्ज़त न उतार दें मेरे साथ।"

'उतारने दीजिये न, वो मेरी ज़िम्मेदारी है! लेकिन आप दुकान बन्द नहीं करेंगे आज।'

"शर्मिन्दा न करें, आपकी बात काटना नहीं चाहता हूँ, पर मैं रुक नहीं सकता ... जान–माल का सवाल है।"

'पर वर कुछ नहीं। आज मैं यहीं बैठकर चाय पियूँगा। जुलूस गुज़र जाने तक यहीं बैठूंगा। देखता हूँ कौन माई का लाल आगे आता है।'

"क्यों अपने आप को कठिनाई में डाल रहे हो मियाँ? इतने समय के बाद मिले हो। मेरे साथ घर चलो, वहीं बैठकर चाय भी पियेंगे, बातें भी करेंगे। खतरा मोल मत लो। "

'न! खुदा कसम मैं आज यहाँ से उठने वाला नहीं पूरा जुलूस निकल जाने तक। होरी से कहकर यहीं दो चाय मंगवाओ।'

"आप समझ नहीं रहे हैं मियाँ, अब पहले वाली बात नहीं रही। ये लौडे हम बुजुर्गों की भावनाएँ नहीं समझते। दुश्मन मानते हैं हमें।"

'आप यक़ीन कीजिये, इनमें किसी की मज़ाल नहीं जो मेरे सामने खड़ा हो सके। चलाने से पहले बहुत कुछ समझाया है इन्हें।'

"जैसी आपकी मर्ज़ी मियाँ! होरी, जा मुल्ला जी के लिये एक स्पेशल चाय लेकर आ फ़टाफ़ट!"

'एक नहीं, दो!'

"अरे मैं अभी चाय पी नहीं पाऊंगा, मौत के मुँह में बैठा हूँ।"

'वो परवरदिग़ार सबकी हिफ़ाज़त करता है। जब तक मैं यहाँ हूँ, आप बेफ़िकर होकर बैठिए।'

"बेफ़िकर? ज़रा पलट के देखिये! आ गये हुड़दंगी। शीशे तोड़ रहे हैं। ताजिये दिखने से पहले तो जलाई हुई दुकानों का धुआँ दिखने लगा है।"

'अरे! ये कैसे हो गया? चलने से पहले मैंने सबको समझाया था, क़ौमी एकता पर एक लम्बी तकरीर दी थी।'

"बस ऐसे ही होता है आजकल। एक कान से सुनकर दूसरे से निकालते हैं। अब मेरी जान और दुकान आपके हवाले है।"

'ज़ाकिर!, हनीफ़! क्या हो रहा है ये सब? क्या बात तय हुई थी जुलूस उठने से पहले?'

'अरे आप यहाँ? सब खैरियत तो हैं?'

'मुझे क्या हुआ? थोड़ा तेज़ चलकर पण्डितजी से मिलने आ गया था।'

"आपको ऐसे बिना–बताये ग़ायब नहीं होना चाहिये था। शहर का माहौल बड़ा खराब है।"

'बेटा, ये पण्डित रामगोपाल हैं! मेरे लिये सगे भाई से बढकर हैं।'

"वो तो ठीक है। लेकिन आपको ग़ायब देखके वहाँ तो ये उड़ गयी कि हिन्दुओं ने आपको अगवा कर लिया है ... हमने बहुत रोका मगर जवान खून है, बेक़ाबू हो गया। हम भी क्या करते? किस–किस को समझाते?"

समझ

बड़े साहब का कुत्ता बहुत प्यारा था। एक बार भी मुझपर नहीं भौंका। उन्होंने मुझे चाय पिलाई तो पास में बैठकर लगातार मुझे देखता रहा।

"बहुत शांत कुत्ता है," मैंने अचरज से कहा।

"बड़ा होशियार है यह," साहब ने कहा, "हमारी हर बात, एक–एक शब्द समझता है।"

"अरे वाह ..." मैंने साहब की हाँ में हाँ मिलायी।

"नहीं, मैं कुत्ता हूँ, कुछ नहीं समझता" कुत्ते ने ज़ोर से भौंककर साहब की बात काट दी।

संतोष श्रीवास्तव

कहानी, उपन्यास, कविता, स्त्री विमर्श, संस्मरण, लघुकथा, साक्षात्कार, आत्मकथा की अब तक बाइस किताबे प्रकाशित। चार अंतर्राष्ट्रीय तथा 18 प्रादेशिक स्तर के पुरस्कार मिल चुके है। कहानी 'एक मुट्ठी आकाश' एस.आर.एम. विश्वविद्यालय चैन्नई में बी.ए. के कोर्स में, लघुकथाएं महाराष्ट्र राज्य के 11वीं की बालभारती में, सरल हिंदी के कोर्स में पढ़ाई जाने वाली पुस्तक हिंदी सरोज में कहानी सम्मिलित जो महाराष्ट्र गोवा और कर्नाटक के 32 कॉलेजों में पढ़ाई जाती है। कहानियों, लघुकथाओं, और उपन्यासों का कई भाषाओं में अनुवाद हो चुका हैं। संतोष जी हेमंत फाउंडेशन हेमन्त स्मृति कविता सम्मान एवं विजय वर्मा कथा सम्मान प्रतिवर्ष प्रदान करती है । अंतर्राष्ट्रीय विश्व मैत्री मंच की संस्थापक अध्यक्ष हैं।मोबा–9769023188

उषा की दीपावली

दादी ने नरक चौदस के दिन आटे के दीप बनाकर तुलसी चौरा सहित हर कमरे की देहरी जगमगा दी थी। घर पकवान की खुशबू से तरबतर था गुझिया, पपड़ी, चाकोली सेव मगर दस वर्षीय उषा को तो चॉकलेट और बंगाली मिठाईयां ही पसंद थीं। दादी कहती हैं कि –'तेरे लिए तेरी पसंद की मिठाई ही आएँगी। यह सब तो पड़ोस, नाते–रिश्तेदारों, घर आए मेहमानों के लिए हैं।'

आटे के दीपक कंपाउंड की मुंडेर पर जलकर सुबह तक बुझ गए थे। उषा जॉगिंग के लिए फ्लैट से नीचे उतरी तो उसने देखा पूरा कंपाउंड पटाखों के कचरे से भरा हुआ था। जमादार उन दीपों को कचरे के डिब्बे में न डाल अपनी जेब में रख रहा था।

'तुमने दीपक जेब में क्यों रख लिए?'

'घर जाकर अच्छे से सेककर खा लेंगे, अन्न देवता है न।' जमादार ने खींसे निपोरीं।

उषा की आंखे विस्मय से भर उठीं। तमाम दावतों में भरी प्लेटों में से ज़रा सा टूंगने वाले मेहमान और कचरे के डिब्बे के हवाले प्लेटों का अम्बार उसकी आंखों में सैलाब बनकर उमड़ आया। वह दौड़ती हुई अंदर गई। जल्दी जल्दी पकवानों से थैली भरी और दौडती हुई एक साँस में सीढियाँ उतर गई.... अब वह थी और जमादार की कांपती हथेलियों पर पकवान की थैली। उषा की आंखों में हजारों दीप जल उठे ।

हीरालाल नागर

कहानी, कविता और समीक्षा। समयचेतना, अहा! जिंदगी, दैनिकभास्कर में पत्रकारिता। कविता संग्रह 'जंगल के खिलाफ 1994 में। कहानी संग्रह 'अधूरी हसरतों का अंत' 2004 में। 'डेक पर अंधेरा' (उपन्यास) 2013 में प्रकाशित। लघुकथा संग्रह 'कितनी आवाजें', 'सोलह घरों की छत' (कलेश्वर की चुनिंदा कहानियां) का संपादन। 2014 से 2016 तक भारतीय ज्ञानपीठ में, नया ज्ञानोदय का संपादन। वर्ष 2002 में आर्य स्मृति कथा सम्मान। वर्ष 2005 में शैलेश मटियानी कथा सम्मान। फोन : 9968551414

मोर्चा दर मोर्चा

सभी औपचारिकाएँ पूरी होने के बाद सीमांत पर डटे सैनिक ने अपना बोरिया–बिस्तर हवाई जहाज के अन्दर ढकेला तो केयर टेकर ने उसे रोका– ''यह बॉक्स नहीं जाएगा।''

''क्यों?'' सैनिक ने प्रश्नवाचक निगाहों से केयर टेकर की ओर गौर से देखा।

''बॉक्स का वजन सौ किलोग्राम से ज्यादा दिखाई देता है।'' केयर टेकर ने कहा।

''दिखाई देता है, लेकिन यह इतना है नहीं। चाहे तो आप बॉक्स खोलकर सामान देख लीजिए।'' सैनिक ने सफाई पेश की।

इतने में एक एयरफोर्स ऑफिसर ने हस्तक्षेप किया–''जाने दो। इतने वजन से क्या फर्क पड़ता है।''

''फर्क क्यों नहीं पड़ता, सर!'' केयर टेकर ने अपनी बात को पुख्ता करने के लिए दलील दी– ''ओवर लोड का खतरा है।''

सैनिक पहले थोड़ा हताश हुआ, फिर उसने हिम्मत से काम लिया। अभी तो न जाने कितने मोर्चों का सामना करना है–ट्रांजिट कैम्प, रेलवे स्टेशन, पुलिस, चोर–बदमास और फिर टिकट चेकर। अभी से हिम्मत हार दी तो आगे क्या होगा? उसने किसी की परवाह किए बगैर बॉक्स को एक धक्के से कैबिनेट के अन्दर पहुँचा दिया।

केयर टेकर बक्से और सैनिक को बड़ी देर तक देखता रहा एक साथ।

पिताजी

ज्यों–ज्यों बच्चे बड़े हो रहे हैं, मैं छोटा होता जा रहा हूँ। घर से दफ़्तर और दफ़्तर से घर। दिनचर्या इतने में ही सिमटती जा रही है। जीने का दायरा छोटा और छोटा होता जा रहा है।

जब पिताजी अपने रिटायरमेंट के करीब थे, अपने में सिमटकर रह गये थे। उनकी ज्यादात्तर आदतें मुझ पर ट्रांसफर हो गई हैं। मैं वही करता हूँ, जिसे पिताजी किया करते थे। मसलन, दूर नौकरी से जब पिताजी छुट्टी पर घर पहुँचते थे, रात गहरा चुकी होती।

नौकरी से मेरा घर पहुँचना भी लगभग आधी रात को ही होता था। पिताजी के आने की आहट हम बच्चों को बातों की खुसुर–पुसुर से होती थी। हम बच्चे कुनमुनाते तो चुप्पी पसर जाती। ऐसा ही शायद मेरे घर पहुँचने पर मेरे बच्चे भी महसूस करते रहे होंगे।

सुबह माँ हमें खाने को खजूर देती। गुड़ और पेठा भी होता। मैं जब भी बाहर से घर आता ये चीजें अनिवार्य रूप से मेरे साथ जुड़ गई थीं। और मुझे पिताजी की याद आती।

पिताजी की कुछ आदतें बरबस भी मुझ में चली आयीं। जैसे कि जमीन में सोना। पैदल अधिक चलना।

वे पैदल बहुत तेज–तेज चला करते थे। कसरती और मेहनती तो थे ही। मैं उनकी किसी आदत को सायास ग्रहण नहीं करता। चेतना में कुछ रहता हो, पता नहीं। मगर, जब उनकी कुछ आदतें दोहराने लगता हूँ तो लगता है जैसे पिताजी मुझ में अब भी जियें जा रहे हैं।

सविता मिश्रा 'अक्षजा'

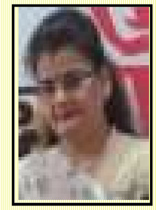

जन्म– 1 जून 1973, प्रयागराज। शिक्षा– इलाहाबाद विश्वविद्यालय से स्नातक (हिंदी, राजनीति–शास्त्र, इतिहास) । गृहिणी। रोशनी के अंकुर लघुकथा संग्रह प्रकाशित। ब्लॉग– 'मन का गुबार' एवं 'दिल की गहराइयों से'। मोबा–9411418621

बेड़ियाँ टूटेंगी!

'लोग देख रहे हैं! यह घर नहीं, पार्क है।'–गले में पड़ी बाहें एक ओर हटाते हुए बुजुर्ग ने कहा।

"एक फूल देने में क्या परेशानी है जी? मुआ वैलेंटाइन डे है आज!"

"थोड़ी शरम करो, हमारी अब उम्र नहीं रही रोमांस करने की।'

'शरम गई तेल लेने। जवानी तो बच्चों को बड़ा करने में बिता दी। बच्चे बड़े हुए तो बिन हमारी परवाह किए फुर्र से उड़ गए। अब जाके हम बूढ़ा–बुढ़िया को समय मिला है एक–दूजे के साथ और एक दूजे के लिए जीने का समय। नौकरी से भी रिटायर और जिम्मेदारियों से भी। और कहते हैं न कि प्यार जताने की कोई उम्र नहीं होती है।"

"उम्र तो नहीं होती है, लेकिन हमारी उम्र हो चली है। जवानी में मन ने कितनी बार कहा कि तेरे लिए ऐसा ही सुर्ख गुलाब ले आऊँ, कितनी बार तेरे घुंघराले बालों के लिए वेणी खरीदने का मन किया था, लेकिन..!"

'तो मन की अब कर लो जी। पहले माता–पिता का लिहाज फिर जवान होते बच्चों से संकोच ने तब तो जैसे बेड़ियाँ ही डाल रखी थीं।"

'अरे! लोग कहेंगे कि बुड्ढा–बुढ़िया सठिया गए हैं।"

"लोग तो ये भी कहते हैं न कि बुढ़ापे में शरम–वरम सब खत्म हो जाती है। बुजुर्ग, बच्चों–से हो जाते हैं। दुनिया के नियमों से आजाद। इस आजादी को जियो और हमें भी जीने दो न!'–बुढ़िया ने फिर से गुलाब बढ़ाते हुए कहा।

'जब समय था, समय न मिला। अब समय है, पर समय न रहा। वैसे ठीक कहती हो तुम। इस समय के फेर में अब मैं भी नहीं पड़ता हूँ।ऽ'–मुस्कुराते हुए गुलाब पकड़ उन्होंने बुढ़िया का माथा चूम लिया। बगल की बेंच पर बैठा युगल जोड़ा उन्हें देखकर मुस्कुराया। जवाब में वो दोनों भी मुस्कुरा दिएं।

"एक सेल्फ़ी विदेश में बैठे बच्चों को भेजकर

उन्हें भी बताती हूँ, कि अंतिम समय को हम दोनों मजे से जी रहे हैं उनके बगैर भी।'

"सेल्फी ही क्यों, कॉल करता हूँ।'

वाट्सएप पर वीडियो कॉलिंग की रिंग जाती है। दोनों बुजुर्ग हँसते हुए दुनिया की फिक्र छोड़ एक दूजे में खोते से नजर आते हैं।

'जब तक कॉल कनेक्ट होती है पीछे मुड़ो, तुम्हारे जूड़े में गुलाब लगा दूँ?' गुलाब कांपते हाथों से लगा ही रहे थे कि तभी वीडियो कॉलिंग में पोता चहकता हुआ कहता है "दादू! यू आर ग्रेट, इंजॉय योर लाइफ।"

हड़बड़ाहट में गुलाब जूड़े के बजाय जमीन पर गिर पड़ा था और साथ ही उनकी नजरें भी धरती में धंसने लगी थीं।

दोषी कौन

'जब भी अखबार पढ़ते हो, मुस्कुराते क्यों हो! पढ़ने के बाद बिटिया से लाड़ लड़ाते समय तुम्हारे चेहरे पर गर्व साफ-साफ दिखता है!' रमेश को छेड़ते हुए उसकी पत्नी सोनी ने कहा।

सुनकर रमेश मुस्कुरा पड़ा ।

'शायद तुम अपनी माँ के उलाहनों को भूल गए हो?'

'नहीं रे, मैं कुछ भी नहीं भूला हूँ बल्कि मुझे, मेरे डिसीजन पर गर्व है। दो-चार बच्चे पालने का जमाना गया।'

''फिर यह मंदमंद मुस्कुराने का राज क्या है?'

'रोज ही अखबार में बेटों के द्वारा अपमानित हो, बेघर हुए माँ-बाप की खबरें पढ़कर दुःख होता है सोचकर खुश होता हूँ कि अच्छा है कि मेरे कोई बेटा नहीं है। 'बेटियां माँ-बाप की ताजिंदगी सेवा करती हैं' यह सुनकर तो मुझे बेटी का बाप होने पर गर्व होता है।' जैसे-जैसे बिटिया बड़ी हो रही थी, पत्नी से कहते हुए रमेश के इन शब्दों का वजन भी बढ़ता जा रहा था।

हाथ में अखबार पकड़े हुए अतीत के समुन्दर में गोते लगाए रमेश को सोनी ने उबारा- 'क्या हुआ जी, कहाँ डुबकी लगाए हुए थे?'

'कहीं नहीं, तुझसे ही तो बतिया रहा था।'

'तुम भी न..!" सोनी नवब्याहता सी शरमा गयी।

अरे, तू चाय क्यों बना लाई..! पैरो से चला नहीं जाता, लेकिन पति सेवा जरूर करेगी!'

'पकड़ो..! वर्ना हाथों में भी अब इतनी जान नहीं है कि देर तक दो प्याला पकड़े खड़ी रहूँ।'

'बिटिया आ रही है?' चाय का प्याला पकड़कर आस भरी निगाहें सोनी के चेहरे पर टिका दी।

'नहीं, कह रही थी कम्पनी में बहुत काम है और आपके दामाद को भी छुट्टी नहीं मिल रही है।'- रमेश के मुख से उसने थर्मामीटर लिया और जोर से झटक दिया। रमेश को लगा जैसे आस भी छिटककर दूर जा गिरी है।

'तूने बताया नहीं उससे कि मैं बहुत ज्यादा बीमार हूँ।'- एक झटके में आस भरी निगाहों में अब दीनता भर आयी थी।

'बताया..।'-ठंडी सांस छोड़ते हुए वह बोली।

'जल्दी ही छुट्टी लेकर आने को बोली होगी?' चाय की चुस्की लेते हुए आस को पकड़ने को लपके।

'नहीं, कह रही थी दोनों-जन किसी अच्छे से हॉस्पिटल में जाकर दिखा आइए। पूरे शरीर की जाँच करवा लीजिएगा।'-चाय में पड़ी परत हटाकर एक घूँट लेकर फिर बोलना जारी रखा। मैंने उससे कहा कि 'उसमें तो बहुत रुपये लगेंगे! तेरे पापा ने तो कुछ भी बचा के नहीं रखा। तेरी पढ़ाई और फिर शादी में सब खर्च कर दिया, ले-दे-के यह मकान बचा है।'

'फिर क्या बोली वह?'

'कह रही थी कि रुपयों के लिए मौके का मकान नहीं बेच दीजिएगा। डॉक्टर से मेरी बात करा दीजियेगा, जितना भी लगेगा मैं सीधे उनके अकाउंट में ट्रांसफर कर दूँगी।'

'हूँ...!'

'अच्छा माँ, काम बहुत है, फिर बात करूँगी। बाय...। कहकर फोन काट दिया उसने!'

गरम चाय की अंतिम घूँट लेते हुए रमेश ने ठंडी आह भरी, फिर क्षितिज की ओर देखकर मुस्कुराने लगे।

'अब क्यों मुस्कुराए भला?'-व्यंग्य पूर्वक सोनी हठात बोली।

'अरे पगली, हँस इसलिए रहा हूँ कि दोष बेटे-बेटी का नहीं, आजकल के माहौल का ही है।' वातावरण में अब अजीब-सा सन्नाटा पसर गया था।

****

श्रेष्ठ लघुकथा वह है, जो पाठक को बाँध ले। इसके लिए ऐसा कठोर नियम नहीं बनाया जा सकता कि सभी कथातत्त्व उपस्थित हों। सबकी उपस्थिति में भी लघुकथा घटिया हो सकती है।

डॉ.सुरेन्द्र गुप्त

****

आचार्य नीरज शास्त्री

विविध विधाओंकी 84 पुस्तकें प्रकाशित। सम्मान/पुरस्कार उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ के श्री कृष्ण विनायक फड़के बाल साहित्य समीक्षा पुरस्कार एवं गृह मंत्रालय, भारत सरकार के निबंध पुरस्कार सहित लगभग चार दर्जन प्रतिष्ठित हिंदी सेवी पुरस्कार। सम्पादन– सम्यक्, विजन, बिषवाण, मानवाधिकार समाजशक्ति, दृश्यांतर आदि का। अध्यक्ष–तुलसी साहित्य–संस्कृति अकादमी न्यास। मोबा–9758593044

विद्रोह की सजा

शाम का समय था। आकाश में सूर्य अस्त होने के बाद लाली के स्थान पर स्याही छाने लगी थी। बेचारा बूढ़ा पीपल का पेड़ पूरे दिन अपने परिवार को जोड़े रखने की भरपूर कोशिश करता रहा। उसके कुछ पत्ते जिन्हें कि अपने यौवन पर गर्व था, आजाद होना चाहते थे। उन्हें पेड़ की शाखाओं के साथ बंधकर रहना अच्छा नही लग रहा था इसलिए वे विद्रोह पर उतर आए थे।

बेचारा बूढ़ा पीपल उन्हें समझाता रहा–" मेरे पत्तो ! मुझे अपने सभी पत्ते समान रूप से प्रिय हैं। मैंने सबका समान पोषण किया है और सबके साथ मेरी समान आत्मीयता है। फिर तुम परिवार से अलग क्यों होना चाहते हो?"

पत्ते तमतमाते हुए बोले–" आपने क्या किया है क्या नहीं, इससे हमें कोई सरोकार नहीं; हम तो बस आजाद होना चाहते हैं।"

बूढ़े पीपल ने एक बार फिर उन्हें धैर्य पूर्वक समझाते हुए कहा–" मेरे पत्तो! शाख से अलग होकर तुम आज़ाद तो हो जाओगे किंतु तुम्हारा भाग्य दुर्भाग्य में बदल जाएगा। हवा न जाने तुम्हें कहां ले जाएगी, कोई नहीं जानता इसलिए मेरे पत्तो ! मेरी बात मान लो, मुझे छोड़कर मत जाओ।"

लेकिन पत्तों ने बूढ़े पीपल की बात नहीं सुनी। वे एक ही झटके में शाख से अलग हो गए। कुछ ही समय बीता होगा कि तेज़ आंधी आई और उन्हें उड़ाकर बहुत दूर ले गयी। तब वे छटपटाने लगे परंतु हवा ने उन्हें नहीं छोड़ा। हवा की तेज़ गति के साथ वे आग की लपटों में जा गिरे, जहां उन्हें जलना ही था। तब वे अपनी जिद पर आंसू बहा रहे थे और उन्हें याद आ रही थीं बूढ़े पीपल की बातें।

अम्बुजा एन. मलखेड़कर

डा अंबुजा मलखेडकर शिक्षा– पी–एच. डी (हिंदी) एक नाटक, तीन कविता, दो बालसाहित्य, एक लघुकथा संग्रह सहित कुल सात पुस्तकें प्रकाशित। लगभग एक दर्जन प्रतिष्ठित हिंदी सेवी संस्थाओं द्वारा सम्मानित। मोबा–9740477909

स्वच्छ दीपावली स्वस्थ दीपावली

सुमित ने अपने स्कूल में आयोजित दो दिन की कार्यशाला में मूर्तियां बनाना सीख लिया था। इसलिए इस बार घर में उसके बनाए हुए लक्ष्मी–– गणेश दीपावली के पूजन में प्रयोग किए जाने हैं।

दिवाली के दिन सुमित के बनाए लक्ष्मी– गणेश को चौकी पर बैठाया गया परन्तु परिवार में किसी ने भी उसे शाबासी नहीं दी।

वह उदास होकर घर के कोने में बैठ गया और बीती घटनाओं को याद करने लगा। उस दिन जब वह प्रतिमा बना रहा था पिताजी ने उसे डांटते हुए कहा था–'यह क्या! तुमने पूरे आंगन को कीचड़ बना दिया है। कपड़े कितने गंदे कर लिए हैं! क्या तुम्हें इसीलिए रुपए दिए थे ? उन रुपयों से तुम इससे अच्छे लक्ष्मी– गणेश लेकर आ सकते थे।

उसका एक मित्र उसके घर आया था, वह बोला– यह रंगीन नहीं है। हमारे घर में तो बहुत बड़े और रंगीन लक्ष्मी– गणेश आए हैं।

यह सुनकर सुमित निराश हो गया। तभी उसका बड़ा भाई अमित वहां आया और बोला––' सुमित किसी की बातों को दिल से मत लगाना । जल प्रदूषण बचाने के लिए अच्छी शुरुआत की है तुमने। मुझे तुम पर गर्व है।'

अपने बच्चों की बात सुनकर उनके पिताजी भी आ गए।

वे कहने लगे –'बेटा! तुमने हमारी आंखें खोल दी हैं। हमारे पूर्वजों ने मिट्टी से बनी प्रतिमाओं से त्योहार मनाने का संदेश दिया है क्योंकि ये पानी में जल्दी घुल जाते हैं। आप दोनों ने बहुत अच्छा कार्य किया है।'

दोनों भाइयों ने खुश होकर कहा–' पापा !अब हम लोग हर वर्ष सभी त्योहार प्रकृति को प्रदूषित किए बिना ही मनाएंगे। और हमारा दिवाली पर संदेश होगा–स्वच्छ दीपावली, स्वस्थ दीपावली।'

डॉ० रवि शर्मा 'मधुप'

जन्म – 1962, दिल्ली
शैक्षिक योग्यता–एम०ए०, एम० एड०, एम० फिल०, पीएच० डी० (हिंदी), स्नातकोत्तर,अनुवाद पाठ्यक्रम
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, श्री राम कॉलेज ऑफ कॉमर्स, दिल्ली वि.वि., दिल्ली 07
विविध विधाओं में 22 पुस्तकें प्रकाशित। अनेक रचनाओं का देश–विदेश की पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशन एवं आकाशवाणी–दूरदर्शन से प्रसारण। कई भाषाओं में रचनाएँ अनूदित। अनेक संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत /सम्मानित। फोन–9811036140

त्यागपत्र

नवनियुक्त सब–इंस्पेक्टर शंकर बदनाम इलाके में रात्रि ड्यूटी पर तैनात था। उसने एक युवती को अशोभनीय मुद्रा में पकड़ लिया। युवती ने कुछ इशारा किया। शंकर वह समझ ना पाया। वह उसे थाने ले आया। वह अभी पूरी बात थाना प्रभारी को बता भी नहीं पाया था कि एक मोटी, अधेड़ औरत पहलवान किस्म के दो आदमियों के साथ दनदनाती हुई वहाँ आ पहुँची। आते ही वह थाना प्रभारी इंस्पेक्टर नेगी पर बरस पड़ी–"एक तो हिस्सा देते हैं, लड़कियाँ भेजते हैं, फिर भी हमारी ही लौंडिया को पकड़ते हो? तुम में कुछ शर्म–हया बची है कि नहीं?"

शंकर ने सोचा था कि अब इंस्पेक्टर नेगी गुस्से में आग बबूला होकर उस औरत को डांटेगा, परंतु हुआ उलटा। वह उस औरत के सामने खुशामद करते हुए बोला,"बाई जी, गलती हो गई। नया–नया लड़का है, अभी नासमझ है; फिर शंकर को डांटते हुए बोला, "तुम्हें मुझसे पूछे बिना किसी को पकड़कर लाने की क्या जरूरत थी? पहली गलती है, इसलिए माफ करता हूँ। कल 56 नंबर में चले जाना; बाई जी सब समझा देंगी। तबीयत खुश हो जाएगी।'

शंकर के लिए यह स्थिति असह्य थी। उसे जैसे काठ मार गया था। उसने अगले दिन अपना त्यागपत्र पुलिस कमिश्नर के पास भिजवा दिया।

विचित्र ईमान

इंस्पेक्टर त्यागी अपनी ईमानदारी के लिए पूरे विभाग में प्रसिद्ध थे। लोग उनके नाम की कसमें खाते थे। एक दिन इंस्पेक्टर त्यागी को रिश्वत लेते हुए रंगे हाथों पकड़े जाने की खबर आई। किसी को सहसा विश्वास नहीं हुआ। सब इसे बदले की कार्रवाई या कोई चाल मान रहे थे।

बाद में, जब इंस्पेक्टर त्यागी की कलई खुली, तो सब ने दाँतों तले अंगुली दबा ली। असल में, एक तरफ इंस्पेक्टर त्यागी अधिकतम लोगों का काम बिना रिश्वत लिए कर देते थे, वे लोग उनकी ईमानदारी की तारीफ करते नहीं अघाते थे। दूसरी ओर, वे एक–दो मोटी आसामियों से जी भरकर वसूल लेते थे। वे लोग अव्वल तो किसी से कुछ नहीं कहते थे और यदि कुछ कहते भी थे, तो कोई उनकी बात पर विश्वास नहीं करता था। इस प्रकार साँप भी मर जाता और लाठी भी नहीं टूटती थी। ऊपरी कमाई भी होती रहती थी और त्यागी जी ईमानदार भी बने रहते।

कमलेश शर्मा,

विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। एक काव्य संग्रह प्रकाशित। कई संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत।
फ़ोन–9829837212.1.

कबाड़

सुबह ऑफ़िस जाते समय शर्मा जी ने पत्नी रमा को आदेश दिया,"देखो रमा आज मैंने अपने बॉस को रात के खाने पर घर पर बुलाया है। अगर वो खुश हो गए तो अपनी प्रमोशन पक्की। तुम दिन में घर की अच्छे से सफ़ाई कर लेना। पुरानी चीज़ें, जो काम ना आ रही हो, जो घर की शोभा में बाधक हो, कबाड़ हों, सब पीछे स्टोर में डाल दो ताकि बॉस की नज़र उन पर ना पड़े ओर शाम के लिए बढ़िया सा खाना बना लेना। मैं भी कोशिश करूँगा जल्दी घर पहुँचने की।'

शाम को शर्मा जी घर पहुँचे, घर को साफ़ सुथरा देख खुश हुए– "अरे वाह...,सब हो गया?"

"हाँ, मगर माँ की खटिया की स्टोर में जगह नहीं बन पा रही।"

शर्मा जी कभी पत्नी की ओर तो कभी माँ का मुँह ताकते रहे....!

बिखरी कहानियाँ

आज बसंती बाई फिर देर से आई ,मैंने डाँटते हुए उसका कारण पूछा तो हमेशा की तरह उसने फिर बहाना बनाया–"वो मालकिन, क्या है ना, कल मेहमान आ गए थे, रात यही रुके। देर रात तक खाना पीना चला। बात करते रहे, सुबह नींद ही नहीं खुली।"

मैं बड़बड़ाती रही,"कितने बहाने करती है,सच थोड़ा ना बताएगी। पियक्कड़ पति संग लड़ाई झगड़ा कर रही होगी। पर क्या करूँ, इन लोगों के बिना भी गुज़ारा नहीं ।

बसंती, तुम्हें पता है ना,जब तुम समय पर नहीं आती, तो घर का सारा काम मुझे करना पड़ता है। बच्चों का टिफ़िन भी मुझे बनाना पड़ता है। तुम जानती हो, मैं एक लेखिका हूँ, रात देर तक लिखने पढ़ने का काम करती हूँ। देर रात सोती हूँ। सुबह जल्दी नहीं उठ पाती इसीलिए तुम्हें रखा है, ताकि तुम समय पर आ कर बच्चों को स्कूल भेज दो। तुम्हारे चक्कर में कई दिन से एक कहानी भी नहीं लिख पाई। समझ ही नहीं पा रही कि क्या लिखूँ। तुम ठीक से घर सम्भालो तो मुझे कुछ सूझे। कहते हुए मैंने उसकी तरफ गुस्से से देखा।

सूजी आँखे, बिखरे बाल, अस्त व्यस्त कपड़े, और गालों पर उँगलियों के निशान लिए वह भी मेरी तरफ ही देख रही थी.

"कुछ कहानियाँ दिल, दिमाग़ ओर शरीर पर भी बिखरी हुई होती है। उससे निगाह मिलते ही मेरी कलम थम गई।

सुकेश साहनी

कृतियाँ–डरे हुए लोग,ठंडी रजाई, साइबरमैन,प्रतिनिधि लघुकथाएँ,(लघुकथा–संग्रह), लघुकथा–सृजन और रचना–कौशल (आलेख संग्रह,), मैग्मा और अन्य कहानियाँ , अक्ल बड़ी या भैंस (बालकथा–संग्रह लघुकथाएँ) सम्प्रति–भूगर्भ जल विभाग उ.प्र. के निदेशक पद से सेवानिवृत्त। **मोबा**–9634258583

सूखा

"क्या बात है? बहुत उखड़े–उखड़े लग रहे हो!" धरती से भाप के रूप में लौटे पानी से बादल ने पूछा।

"कुछ मत पूछो, भैया!" पानी ने ठंडी साँस छोड़ी,"पृथ्वी और उस पर रहने वाले सभी प्राणियों को हम एक नजर से देखते हैं, लेकिन धरती पर पहुँचते ही जिस तरह का सुलूक हमारे साथ किया जाता है उससे हमारे सभी प्रयास निष्फल हो जाते हैं।"

"तो क्या इस बार भी?"

"हाँ, वही तो.........इस बार उन्होंने मुझे बोतलों में भरकर बिक्री के लिए सजा दिया था। रेलवे स्टेशन के सभी नल सूखे पड़े थे, लोग मेरी एक–एक बूंद के लिए तरस रहे थे। पर मैं कैदखाने से उन्हें टुकुर–टुकुर ताकने के सिवा कुछ नहीं कर सकता था।"

"फिर तुम मुक्त कैसे हुए?"

"वातानुकूलित यान में यात्रा कर रही एक युवती ने मुझे खरीदा, उसने मेरा इस्तेमाल टूथपेस्ट करने में किया।"

बादल सोच में पड़ गया।

"भइया," थोड़ी देर बाद बादल ने कहा, "अब मुझे इस समस्या का एक ही हल नजर आता है, हमें जनहित में अपने गुणधर्म का परित्याग कर देना चाहिए, आज से हम वहीं बरसेंगे जहाँ हमारी सबसे अधिक जरूरत होगी।"

पानी को बादल की बात जँच गई। वे दोनों ऐसे ही किसी क्षेत्र की खोज में निकल पड़े। थोड़ा रास्ता तय करने के बाद उन्होंने देखा–एक ग्रामीण युवती निर्वस्त्र हो सूखे खेत में हल चला रही थी ताकि इन्द्रदेव प्रसन्न होकर वहाँ वर्षा कर दें। वह इलाका पिछले चार सालों से सूखे की चपेट में था। इसी गाँव के तीस किसानों ने पिछले महीने गरीबी से तंग आकर आत्महत्या कर ली थी।

"हमें यहीं बरसात करनी चाहिए!"

दोनों एकमत थे। उन्होंने उन सूखे खेतों पर हल्की फुहार छोड़ी ही थी कि पश्चिम दिशा से आई तेज हवा उन्हें अपने साथ उड़ा ले चली। इससे पहले कि उनकी समझ में कुछ आता, वे उस 'स्वीमिंग पूल' पर बरस रहे थे जहाँ 'मिस युनिवर्स' के खिताब के लिए जमा सुंदरियाँ जल क्रीड़ा कर रही थीं।

ब्रेक पांइट

"माँ जी, आपके पति बहुत बहादुर हैं....।" राउण्ड पर आए डॉक्टर ने नाथ की पत्नी से कहा, " एक बारगी हम भी घबरा गए थे, पर उस समय भी इन्होंने हिम्मत नहीं हारी थी। अब खतरे से बाहर हैं।"

पूरे अस्पताल में नाथ की बहादुरी के चर्चे थे। चलती ट्रेन से गिरकर उनका एक बाजू कट गया था और सिर में गम्भीर चोट आई थी। घायल होने के बावजूद उन्होंने दुर्घटना स्थल से अपना कटा हुआ बाजू उठा लिया था और दूसरे यात्री की मदद से टैक्सी में बैठकर अस्पताल पहुँच गए थे। चार घण्टे तक चले जटिल ऑपरेशन के बाद वह सात दिन तक आई.सी.यू. में जिंदगी और मौत के बीच झूलते रहे

थे। आज डॉक्टरों ने उन्हें खतरे से बाहर घोषित कर जनरल वार्ड में शिफ्ट कर दिया था।

"विक्की दिखाई नहीं दे रहा है...?" दवाइयों के नशे से बाहर आते ही उन्होंने पत्नी से बेटे के बारे में पूछा।

"सुबह से यहीं था, अभी–अभी घर गया है।" शीला ने झूठ बोला, जबकि सच्चाई इससे बिल्कुल उलट थी। माँ–बाप को छोड़कर सपत्नीक अलग रह रहा पुत्र अपनी नाराजगी के चलते पिता के एक्सीडेंट की बात जानकर भी उन्हें देखने अस्पताल नहीं आया था।

थोड़ी देर तक दोनों के बीच मौन छाया रहा।

"मेरे ऑपरेशन की फीस किसने दी थी?" उन्होंने फिर पत्नी से पूछा।

इस दफा शीला से कुछ बोला नहीं गया। वह चुप रही। नाथ ने आँखें खोलीं और सीधे पत्नी की आँखों में झाँकने लगे। शीला ने जल्दी से आँखें चुरा लीं। उनको अपनी जीवनसंगिनी का चेहरा पढ़ने में देर नहीं लगी। उनकी आँखें पत्नी की कलाई पर ठहर गईं, जहाँ से सोने की चूड़ियाँ गायब थीं।

"शाबाश पुत्र!!" उनके मुँह से दर्द से डूबे शब्द निकले और उनकी आँखें डबडबा आईं।

"शीला ने पैंतीस वर्ष के वैवाहिक जीवन में पहली बार अपने पति की आँखों में आँसू देखे तो उसका कलेजा मुँह को आने लगा। यह पहला अवसर नहीं था जब जवान बेटे ने उनके दिल को ठेस पहुँचाई थी, पर हर बार बेटे की इस तरह की हरकतों को उसकी नादानी कहकर टाल दिया करते थे।

एकाएक उनकी तबियत बिगड़ने लगी। ड्यूटी रूम की ओर दौड़ती हुई नर्से.....ब्लड प्रेशर नापता डाक्टर....इंजेक्शन तैयार करती स्टाफ नर्स...स भ ा ी हैरान थे। उनकी साँस झटके ले लेकर चल रही थी. ... डॉक्टर ने निराशा से सिर हिलाया और चादर से उनका मुँह ढक दिया। वह हैरान था, उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि जिस आदमी ने अपनी बहादुरी और जीने की प्रबल इच्छा के बल पर सिर पर मँडराती मौत को दूर भगा दिया था, उसी ने एकाएक दूर जाती मौत के आगे घुटने क्यों टेक दिए थे!

डॉ संध्या तिवारी

शिक्षा–एम.ए.(हिन्दी,संस्कृत),बी.एड.
पी–एच.डी.,प्राध्यापिका,स्नातकोत्तर
महाविद्यालय,पीलीभत। मोबा7017824491

एक और पुरु

'क्या तुम मुझे अपना यौवन दे सकते हो?'– ययाति ने पुरु से पूछा।

'तेरे पापा नहीं आए अभी तक?'

'दादी पापा आ जायेंगे। आप कथा सुनाओ न।'–आयुष ने कहा।

'हाँऽ आँ , सुनाती हूँ... ,सुनाती हूँ.., फिर पुरु ने अपने पिता से पूछा, पिता जी आप मेरे यौवन का क्या करेंगें ? बेटा , मुझे अपनी नयी पत्नी से भोग विलास करना है, इसलिए मुझे तुम्हारा यौवन चाहिए।' पुरु ने आज्ञाकारी पुत्र की तरह उन्हें अपना यौवन सौंप दिया और उनकी जरावस्था स्वयँ ले ली।

रात का धुंधलका छाने लगा था।

'फोन तो लगा अपने पापा को, कहाँ रह गया है। कितनी देर कर देता है रोज चिन्ता लग जाती है।'

'दाऽऽदीऽऽ ,आप कहानी सुनाओ न, पापा आते ही होंगे। कन्फेक्शरी की दुकान देररात बन्द होती है।' आयुष ने दादी को समझाते हुए कहा।

अचानक आयुष को जैसे कुछ याद आया, –'अच्छा दादी, एक बात बताओ, पापा तो बता रहे थे कि उन्हें अपनी वैज्ञानिक खोज के लिये राज्यपाल जी से अवार्ड मिला था और विट्स–पिलानी में पढ़ने का ऑफर भी। फिर पापा वहाँ क्यूँ नहीं पढ़े? आई. आई. टी. की जगह आई. टी .आई का डिप्लोमा करके कन्फेक्शनरी की शॉप खोल कर बैठे हैं?'

'तू तो अपनी उम्र से ज्यादा बड़ी बातें करता है, तेरे जित्ती जब मैं थी, तो मुझे बी. ए. नहीं मालूम था और तू महाभारत, विट्स–पिलानी, आई.आई.टी. और आई.टी.आई. की बातें करता है। चल सुन कहानी, सुनाती हूँ ; बहुत समय भोग–भोगने के बाद ययाति का मन भर गया,तो उन्होंने पुरु को उसका यौवन वापस लौटाया और अपना राज्य भी दे दिया।'

"आयुऽऽऽऽष..."

'पापा आ गये... ' आयुष ने पापा के हाथ से स्कूटी लेकर घर के अन्दर खड़ी की और दादी के पास बैठे पापा को पानी देने के बाद... फिर.. ? कहकर दादी की तरफ देखने लगा।

'क्या हो रहा है , आयु... ?'

'ययाति की कहानी सुन रहा है।'– इस बार जवाब दादी ने दिया।

''ओहो ! तुम तो यार बड़े ज्ञानी हो गये।'' कहते हुये पापा ने आयुष के हाथ पर हाथ मार कर हाई–फाइव किया ।

'अरे ! ऐसा वैसा ज्ञानी नहीं, उसे तो यह भी मालूम है कि आई.आई.टी. छोड़ तुमने आई.टी.आई.श की।'–दादी नज़रें झुकाये हुए धीरे से बोलीं।

'हाँ पापा, मैं तो भूल ही गया... अब आप बताओ... राज्यपाल जी ने जब आपको विट्स–पिलानी का ऑफर दिया तो आपने क्यों नहीं माना... ?'

अतीत में जाती पतली सी संध को उसने 'मुकद्दर में जो लिखा' के गारे से बन्द कर दिया था... लेकिन आज बेटे ने अनजाने ही प्रश्न की लकड़ी से खड़खड़ा कर संध का छेद इतना बड़ा कर दिया कि उसने देखा वह खड़ा है विट्स–पिलानी के डायरेक्टर के सामने और कह रहा है ; कि सर मुझे इस समय पढ़ाई नहीं नौकरी चाहिये क्योंकि पिता ययाति को किसी शर्मिष्ठा का भोग करना है और मुझे माँ देवयानी का भरण पोषण।'

डायरेक्टर ने कहा –नौकरी तो नहीं मिल सकती..., मुफ्त शिक्षा मिल सकती है... ।'

नौकरी और शिक्षा में से नौकरी का पलड़ा भारी था...और फिर काफी समय बाद राज्यपाल जी तक आने जाने का ट्रेन का किराया मिला ,दो सौ चौवन रूपये मात्र।

'पापा तो न जाने क्या सोचने लगे दादी। आप ही कहानी पूरी कर दो।' आयुष ने दादी से कहा।

'हूँ', कहकर दादी ने पास बैठे बेटे पर आर्द्र नजरें डाल कर कहा ; 'लेकिन राज्य और यौवन अब पुरु के किसी काम के नहीं रहे क्योंकि तब तक उसका बुढ़ापा आ चुका था।'

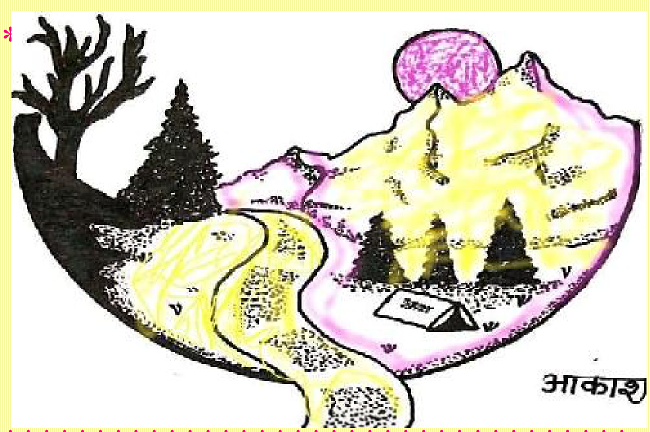

भगवती प्रसाद द्विवेदी

हिन्दी और भोजपुरी के लब्ध प्रतिष्ठ कथाकार, कवि, समालोचक व लोकसाहित्य के अध्येता। उत्कृष्ट बालसाहित्य सर्जना हेतु 'बालसाहित्य भारती सम्मान' प्राप्त शताधिक पुस्तकों के प्रणेता। हिन्दी प्रगति समिति, बिहार के सलाहकार सदस्य रहे द्विवेदी जी को हाल ही में भिखारी ठाकुर सम्मान प्राप्त हुआ है। eksk&9304693031

इडेन एक्सप्रेस

बिहार पथ परिवहन निगम की नई बस इडेन एक्सप्रेस से मैं पटना से छपरा तक की यात्रा कर रहा था। प्रस्थानबिंदु पर ही बुकिंग काउंटर क्लर्क ने कंप्यूटराइज मशीन के जरिए सबको टिकट दे रखा था और अब कंडक्टर प्रत्येक व्यक्ति के टिकट की जाँच कर पानी की बोतल थमा रहा था। सरकार ने सभी यात्रियों को पानी की बोतल और अख़बार की सुविधा मुफ़्त में दे रखी थी।

अख़बार मिलना तो बंद हो गया था, पर पानी की मुफ़्त सुविधा अभी भी बरकरार थी। तभी अचानक बस में तू–तू मैं–मैं होने लगी। कंडक्टर एक महिला यात्री के दो बच्चों के बेटिकट होने का आरोप लगा रहा था, क्योंकि टिकट पर सिर्फ़ एक यात्री का भाड़ा सत्तर रुपये मुद्रित था।

महिला बार–बार कह रही थी कि उसने तीन टिकट के लिए दो सौ दस रुपये बुकिंग क्लर्क को दिये थे। कंडक्टर यह मानने को तैयार नहीं था और दो टिकट के एक सौ चालीस रुपये और माँग रहा था। महिला आर्थिक दृष्टि से निचले तबके की नज़र आ रही थी और बार–बार कंडक्टर पर झल्ला रही थी।

कंडक्टर आग–बबूला होकर महिला से दो टिकट के पैसे माँग रहा था। कई यात्री एक–दूसरे से महिला के झूठ बोलने और धोखाधड़ी करने की गॉशिप में मशगूल हो गये थे।

'कंडक्टर साहब! हाथ–कंगन को आरसी क्या! बुकिंग क्लर्क के मोबाइल पर बात कर लीजिए। हो सकता है, भूलवश तीन की जगह एक टिकट की रकम अंकित हो गई हो। ऐसी स्थिति में हिसाब मिलाने पर दो टिकट के पैसे बढ़ जाएँगे।'–मैंने बीच–बचाव करने की गरज से कहा।

''आप भी कमाल की बात करते हैं, साहब! पूरी बस में सिर्फ़ इसी के साथ ऐसा होगा? आप नये हैं,

ऐसी औरतों को नहीं जानते। फ्रॉड करना इनकी फितरत है!''— कंडक्टर ने झल्लाते हुए कहा।

'और इस महकमे के लोग इतने ईमानदार हैं कि रकम बढ़ जाने की बात कबूल करेंगे। उसने चुपके से रकम जेब में रख ली होगी।'—पास बैठे एक बुजुर्ग ने दलील दी।

'माफ कीजिएगा,बाबा! हमें बगैर सच की पड़ताल किए न तो इस गरीब महिला पर शक करना चाहिए, न उस बुकिंग क्लर्क पर ही।'

मगर कुछ लोग मेरी बात पर नाक—भौं सिकोड़ने लगे,जैसे मैंने कोई बेवकूफी—भरी बात कह दी हो। अंततः मैंने ही कंडक्टर से बुकिंग क्लर्क का नंबर लेकर फोन किया और पूरी दास्तान कह सुनाई। उसने तुरंत कंडक्टर से बात की,—'देखो भई, मैं खुद चिंतित था। दो टिकट के पैसे बढ़ गये हैं। मैंने यहाँ जमा कर दिया है। तुम उन्हें पानी की बोतल दे देना और मेरी ओर से क्षमा माँग लेना। थैंक यू!'

पानी की दो बोतलें लेते हुए, महिला कृतज्ञता—भरी नज़रों से मेरी ओर देख रही थी।

न्यूट्रॉन बम

मुखिया जी अपने दुआर पर हुक्का गुड़गुड़ाते हुए अखबार बाँच रहे थे। एकाएक उनकी नज़र एक समाचार पर अटक गई और उन्होंने बगल में बैठे हुए समहुत चौधरी को झकझोरा, 'समहुत भाई! अब तो ई विदेशी वैज्ञानिक लोग गजबे जुलुम ढाने जा रहे हैं! ऊ का मुखिया जी! कवनो खास खबर है का? समहुत चौधरी ने चौकन्ना होते हुए सवाल ठोंका।

''हाँ भई!वहाँ के वैज्ञानिक लोग एगो बम बना रहे हैं—न्यूट्रॉन बम! ऊ बम जहाँ भी गिरेगा, वहाँ के घर—दुआर तो जस—के—तस सही—सलामत बच जाएँगे, लेकिन ज़िंदा प्राणी जड़ से साफ हो जाएँगे।''—मुखिया जी ने असलियत उगली।

'ऐं!अइसन जादू?'—समहुत चौधरी चिहुँक उठे।

''हाँ—हाँ! मगर जब आदमिए नहीं बचेगा,तो ई सब चीजन की भला का अहमियत!''—मुखिया जी ने हुक्के को एक तरफ खिसका दिया।

तभी समहुत चौधरी ने कुछ सोचते हुए कहा, —मगर मुखिया जी! ई कवनो खास नई चीज नहीं है। ऐसा बम तो यहाँ पहले से ही गिरना शुरू हो गया है।'

'क्या बकते हो, समहुत भाई?'—मुखिया जी के आश्चर्य की सीमा न रही।

''ठीक कह रहा हूँ, मुखियाजी! अइसने एगो पढ़ाई का न्यूटरान बम छोड़ा जा चुका है। तबे न, आदमी जब पढ़—लिख जाता है, तो ऊ बाहर से तो वैसा—का—वैसा ही रहता है, मगर उसके अंदर की आदमीयत मर जाती है और जब आदमियते नहीं रही, तो फिर आदमी ससुरा रहिए के का करेगा?''

मुखिया जी अब भी समहुत चौधरी की ओर टुकुर—टुकुर ताके जा रहे थे।

नरेन्द्र कौर छाबड़ा

पिछले चालीस वर्षों से लेखन में सक्रिय। दस पुस्तकें प्रकाशित। केंद्रीय निदेशालय के हिंदीतर भाषी पुरस्कार, महाराष्ट्र साहित्य अकादमी पुरस्कार के साथ लेखन में अनेकानेक पुरस्कार प्राप्त। मोबा—9325261079

विद्रोह

कपूर दंपति की नौ वर्षीय बेटी दोपहर को अचानक आई और सुबकने लगी। मैंने प्यार से पूछा —"क्या बात है पिंकी क्या हुआ?"

सिसकती सी वह बोली —"मां रो रही है..."

बड़ी हैरानी हुई पूछा —"क्यों?"

"पिताजी ने उन्हें मारा...." धीरे से वह बोली।

"क्या ...?" मेरी हैरानी बढ़ती जा रही थी। पूछा—"तुमने खाना खाया?"

"नहीं..." उसकी आंखों में कातरता के भाव थे। मैं उसे रसोई में ले गई और खाना खिलाया।

अगले सप्ताह वह सवेरे ही आ गई और रोती हुई बोली आंटी, पिताजी ने रात को मां को बहुत मारा। घर से निकाल दिया। रात भर वह सीढ़ियों के नीचे ही रही..."

मैं स्वयं को रोक ना पाई। अगले दिन उनके घर गई। बातों ही बातों में प्रश्न किया कि आप मारपीट क्यों बर्दाश्त करती है? आप की इकलौती बेटी के मन मस्तिष्क पर क्या प्रभाव पड़ेगा आपने कभी सोचा है?"

"सोचना क्या है बहन जी? बचपन में अपनी मां को पिताजी से पिटते हुए देखती थी तो महसूस होने लगा कि शायद यह भी दिनचर्या का ही एक अंग है। शादी के बाद अपने पति की मारपीट पर कुछ आश्चर्य नहीं हुआ। अब पिंकी यह सब देखती है तो भविष्य में होने वाले इसी व्यवहार के लिए तैयार तो रहेगी।"

मुझे घोर आश्चर्य हुआ " कमाल करती हैं आप भी। बेटी को अन्याय का विद्रोह करने, अनुचित कार्य का प्रतिरोध करने की शिक्षा के बजाय उसे दब्बू,

डरपोक बना रही हैं। यह कौन सा ज्ञान दे रही है?"

कुछ दिनों बाद वे दूसरे मोहल्ले में रहने चले गए। एक दिन वे किसी समारोह में मिले। उत्सुकता वश पूछ लिया –" क्या अब भी आपके पहले जैसे मारपीट ...."

" नहीं ,अब वे काफी बदल गए हैं.." उनके चेहरे पर प्रसन्नता के भाव थे।

"उस दिन आपकी बातें पिंकी सुन रही थी। अगली बार जब पति ने मुझ पर हाथ उठाया तो पिंकी ने लपक कर उसे बीच में थाम लिया और बोली –' पिताजी बहुत हाथ उठा चुके हैं आप मां पर। अब अत्याचार नहीं चलेगा। भविष्य में अगर आप ने हाथ उठाया तो मैं और मां इस घर में नहीं रहेंगे या तो आप को इस घर से जाना पड़ेगा....।''

पिंकी के चेहरे पर क्रोध और आवेश के भाव देखकर पति हक्के बक्के रह गए फिर उनका हाथ नीचे चला गया और पश्चाताप के भाव उभरने लगे। बस उसके बाद उन्होंने मुझ पर हाथ उठाना बंद कर दिया"

एक सुखद आश्चर्य हुआ। पिंकी के भीतर विद्रोह की चिंगारी का जन्म हो गया था जो अत्याचार के खिलाफ आवाज उठाने में समर्थ थी।

सिद्धेश्वर

जन्म–20.06.1959शिक्षा स्नातक(कला) सेवानिवृत्त मुख्य टिकट निरीक्षक(पूमरेल) कविता,कहानी,लघुकथा,लेख,चिंतन, बालकविता,भेंटवार्ता,डायरीनामा और बालकहानी आदि की 8पुस्तकें प्रकाशित। कई संस्थाओं द्वारा सम्मानित /पुरस्कृत। मो–9234760365

हरामखोर

महीनों दौड़ते–दौड़ते जब राघव थक गया, तब उसने डॉक्टर से स्पष्ट कह दिया –'डॉक्टर साहब ! आप कैसी दवा लिख रहे हैं कि जेब से हजारों रुपये निकले जा रहे हैं लेकिन मर्ज तो ठीक होने का नाम ही नहीं ले रहा है ?'

''तुम तो बेवकूफ हो! तुम बीमारी ठीक करना चाहो तब तो?.....अब सरकारी अस्पताल में आकर अपनी बीमारी दिखाओगे तो पैसा तो बर्बाद होगा ही न? इतनी भीड़ में और कितना समय दिया जा सकता है, एक मरीज पर ?''

'लेकिन, आपके घर पर तो इससे भी अधिक भीड़ होती है?'

'भाई, सरकारी अस्पताल में तो हम ड्यूटी देते हैं समय की पाबंदी होती है,!.अब, घर जैसी फुर्सत सरकारी अस्पताल में कहां?'

''.. प्राइवेट यानि घर पर इलाज़ कराने की, आपकी फीस भी तो अधिक है, डॉक्टर साहब? प्राइवेट में हम गरीब कहाँ से लाएंगे हज़ारों रुपया ?''

' भाई,, मुफ्त की चीज तो मुफ्त जैसी–ही होगी न ?.......सरकारी अस्पताल में ही सारे मरीज़ ठीक हो जाए, तो फिर प्राइवेट में आएगा कौन?'

''काहे को मुफ्त का इलाज कहते हैं, डॉक्टर साहब ? हमारी फीस तो हमारी सरकार देती है आपको ! ''

' .. देखो, दिमाग मत खाओ और मरीजों को भी देखना है कि नहीं?' उन्होंने तीखी नजरों से देखा और डॉक्टर के सामने प्रिस्क्रिप्शन को फाड़ कर फेंक दिया !

शशि पाठक

शिक्षा–बी0एससी0,एम0ए0 (समाजशास्त्र) वि0वि0मेरठ से। लेख– कहानी,बालकहानी, लघुकथा, लेख, कविता एवं बाल उपन्यास आदि विधाओं में। तीन पुस्तकें प्रकाशित। आकाशवाणी से रचनाओं का प्रसारण एवं अनेक पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशन। तुलसी साहित्य एवं संस्कृति अकादमी एवं साहित्य मण्डल श्रीनाथद्वारा सहित कई संस्थाओं द्वारा सम्मानित /पुरस्कृत। मोबा–9870631805

संगति का असर

मित्र चींटी की सूचना पर सभी चींटियाँ कतारबद्ध होकर भोजन की दिशा में चलने लगीं। भोजन तक शीघ्र पहुँचने की अफरा–तफरी में कुछ चींटियाँ कतार तोड़ एक–दूसरे को धक्का देकर रौंदती हुई आगे बढ़ने लगी।

उनका ऐसा करना कुछ चींटियों को नागवार गुजरा। वे डांटते हुए बोलीं–''अरे चींटियो, कुछ तो शर्म करो।पेट के लिए आदमियों की आदत तो मत अपनाओ।''

सहनशील होना अच्छी बात है परन्तु अन्याय का विरोध करना उससे भी अधिक उत्तम हैं।

जयशंकर प्रसाद

पंकज शर्मा

जन्म–19 सितम्बर 1970,चंदौसी(उ. प्र.) स्नातक,कहानी लेखन महाविद्यालय, अम्बाला छावनी से 'लेख व फीचरलेखन' का कोर्स। अनेक पत्र–पत्रिकाओं में हास्य–व्यंग्य, कहानी, लेख, लघुकथा, कविता, संस्मरण, समीक्षा आदि प्रकाशित एवं आकाशवाणी से प्रसारित। लघुकथा, कहानी और व्यंग्य की तीन पुस्तकें प्रकाशित। पुरस्कार–हरियाणा साहित्य अकादमी, सहित अनेक संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत। मोबा– 09416860445

सिगरेट

"अरे यार, वो तूने देखा नहीं क्या, पीछे माधव खड़ा था।"

"देख लिया था।"

"फिर भी तूने कार नहीं रोकी? उसे भी ले लेता। हाथ भी दे रहा था वह।"

"हां, तो हाथ में क्या था उसके, यह नहीं देखा तूने?"

"हाथ में? हां, शायद सिगरेट थी।"

"शायद नहीं, सिगरेट ही थी।"

"तो?"

"तो, सिगरेट पीने वालों को मैं लिफ्ट नहीं देता।"

"क्यों, क्यों भई?"

"क्योंकि जो सिगरेट के लिए पैसे खर्च कर सकता है, वो किराए–भाड़े के लिए भी कर सकता है।"

"यार, ये तो कोई बात...।"

"और दूसरी बात, कि अगर मैं लिफ्ट देकर उसकी थोड़ी सी बचत कर भी दूं, तो उन्हीं पैसों से वो फिर सिगरेट पियेगा। पियेगा या नहीं?"

"यार, ये क्या?"

"एक बात और, मित्र है, मना नहीं कर पाएंगे। गाड़ी के अंदर पियेगा, तो हमें भी नुकसान पहुंचाएगा, पर्यावरण को तो खै़र ऐसे लोग पहले ही बहुत पहुँचा रहे हैं, अपने आपको और अपने परिवार को भी, ... और हो सकता है मेरी कार को भी...।"

कोई अन्याय केवल इसलिए मान्य नहीं हो सकता कि लोग उसे परम्परा से सहते आये हैं।

प्रेमचंद

उषा सोमानी

पूर्व व्याख्याता (अर्थशास्त्र), पत्र पत्रिकाओं में बालकहानी, बाल कविता, लघुकथा और आलेख प्रकाशित। सलिला संस्था, सलूम्बर द्वारा स्वतंत्रता सेनानी औंकार लाल शास्त्री स्मृति सम्मान पुरस्कार, वर्ष 2021 के लिए अखिल भारतीय स्तर पर बाल साहित्य के अंतर्गत आत्मकथा' लेखन प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया। मोबा– 9785082444

रिश्तों की मिठास

अनुज और अदिति ऑफिस से आए। अनुज बोला, "बहुत थक गया।"

लैपटॉप बैग रखते हुए अदिति बोली, "चाय बना कर लाती हूँ।"

अनुज वहीं सोफे पर लेट गया। अदिति चाय बनाकर लाई और बोली, "मैं चेंज कर आती हूँ।"

वापस आकर अदिति ने चाय का सिप लिया और बोली, "ओहो! चाय में शक्कर भूल गयी। आपने फीकी चाय पी।"

अनुज हँस कर बोला, "चाय में हमारे रिश्तों की मिठास थी। तुम भी थक कर आयी थीं, लेकिन पहले मेरे लिए चाय बनाई। मुझे चाय जरा भी फीकी नहीं लगी, क्योंकि उसमें तुम्हारे परवाह की मिठास जो थी। तुमने बड़े प्यार से मेरे लिए बनायी थी।"

रिश्तों की समझ

अनुपमा मनस्वी को गले लगाती हुई बोली, "कैसी हो ? बहुत दिन हो गए, याद आ रही थी। सोचा, मिल ही आती हूँ, फोन पर बात करने में मजा नहीं आता। इसी बहाने नई बहू के हाथों की चाय भी पी लूँगी।"

मनस्वी और अनुपमा लॉन में बैठ, एक दूसरे के हाल चाल पूछने लगी। मनस्वी ने बहू को आवाज लगायी, "आँचल।"

अनुपमा ने जिज्ञासावश पूछा, "कैसी है बहू। कामकाज भी आता है या नहीं?"

मनस्वी गंभीर होकर बोली, "अनुपमा, तुम्हारा प्रश्न ही गलत है। मैं बहू लायी हूँ, काम वाली बाई नहीं। आजकल की लड़कियाँ पढ़ी–लिखी समझदार होती है। उन्हें प्यार और अपनापन मिलेगा तो जिम्मेदारी खुद बखुद समझ आ जाएगी। रिश्तों की मिठास ही उसे इस घर से जोड़ पाएगी।"

अनुपमा उदास स्वर में बोली, "काश! तुम्हारे जैसी समझ मुझे भी होती। तो मेरे बेटे–बहू आज साथ होते।"

मनस्वी बोली, "बहू के साथ रिश्ता कांच की तरह जुड़ता है और धैर्य से तराश कर हीरा बनाना पड़ता है। जो इस तपस्या में खरा उतरता है, उसका घर स्वर्ग सा सुंदर बन जाता है।"

अनुपमा खड़े होते हुए बोली, "चलती हूँ।"

मनस्वी ने आश्चर्य से पूछा, "अभी तो आयी। चाय नाश्ता करेंगे।"

अनुपमा, मनस्वी के दोनों हाथ पकड़कर बोली, "आज तो तुमने मुझे तपस्या का लाजवाब स्वादिष्ट पकवान खिलाया है। बच्चों के पास जा रही हूँ। चाय नाश्ता अपनी बहू के साथ करूँगी।"

"रोकूंगी नहीं। सुबह का भूला, शाम को घर लौटें तो उसे भूला नहीं कहते। बच्चों के लिए फल और मिठाई अनुपमा के हाथ में देते हुए, "मनस्वी बोली।

दरवाजे पर खड़ी मनस्वी ने बॉय कर अनुपमा को विदा किया। मनस्वी ने देखा, आज अनुपमा के मुख पर ढ़ाई इंच चौड़ी मुस्कान और पैरों में अनोखी फुर्ती थी।

इंजी.अरुण कुमार जैन

रेलविभाग से सीनियर सेक्शन इंजीनियर पद से सेवानिवृत्त। 8पुस्तकें प्रकाशित। अनेक पत्र–पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित एवं आकाशवाणी से प्रसारित। अनेक संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत/सम्मानित। मोबा– 7999469175

कोयले की खदान

कोई इतना कुरूप और भाग्यहीन भी हो सकता है?– सामने से निकलती काली–कलूटी, गूंगी–बहरी युवा काली को देखकर अजय के मन में आज फिर विचार कौंधा।

इसके माँ–बाप कैसे झेल रहे हैं इसे? दुनिया में कौन इससे शादी करेगा? कैसे वितायेगी यह अपना जीवन? कई विचार अजय के मानस पटल पर एकसाथ कौंध गये।पर काली इस तरह की सभी आलोचनाओं से दूर अपनी पढ़ाई व एक्स्ट्रा कैरिकुलर एक्टिविटीज में भाग लेकर शांत मन से जीवन निर्वाह कर रही थी। शासन की विशेष योजना के अन्तर्गत उसकी नियुक्ति गूंगें–बहरे बच्चों के विद्यालय में प्रवक्ता के पद पर हो गई। अपनी कार्य कुशलता और दक्षता के फलस्वरूप कई सम्मान उसके आंचल में समाने लगे। उसके घर क आर्थिक स्थिति भी अब सुधरने लगी। छोटे भाई–बहन अच्छे विद्यालयों में पढ़ने लगे। काली, परिवार का गौरव बन गई।

अब तो काली हेतु विवाह के प्रस्ताव भी आने लगे। एक सुयोग्य वर के साथ काली परिणय–सूत्र में बंध गई।

आज पहली बार काली की आँखों में हर्ष व प्रसन्नता के आँसू झिलमिला रहे थे। आज उसका सम्पूर्णता से साक्षात्कार जो हो गया था।

हे प्रभो, तेरी महिमा तू ही जाने। कोयले की खदान में हीरों को तुम्हीं तो जन्म देते हो। कहकर अजय ने सामने से निकलती काली को नेह व आदर की दृष्टि से देखा। उसे आज काली के व्यक्तित्व में सौन्दर्य, गरिमा और सम्पूर्णता दिखाई दे रही थी।

ड़ॉ. अंजना अनिल

हिंदी /अंग्रेजी मे मे एम. ए... राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं मे लेखन. विभिन्न संस्थाओं द्वारा सम्मानित। मूलनिवासी दिल्ली.। वर्तमान मे अलवर। अंतर्राष्ट्रीय.इनरव्हील क्लब अलवर इकाई की पदाधिकारी. अध्यक्ष.सृजक संस्थान अलवर। मोबा–9414017289

छोटा मुंह...

तबादले के बाद इस शहर में आकर बड़े साहब ने दफ़्तर का कार्यभार संभाला। इस दफ़्तर के माहौल ने उन्हें काफी हद तक प्रभावित किया।

कई दिनों तक तो वे पहले वाले शहर के दफ़्तर को लेकर सोचते रहे.... तुलना में यहां के माहौल को सराहते रहे। भगवान तेरा शुक्र है। इतना स्वस्थ वातावरणः वे तरोताजा हो जाते।

उस शहर के आफिस से... शाम को जब वो घर पहुंचते... चिड़चिड़ाते हुए... बच्चों को अक्सर डांटते... पत्नी से भी बेरूख हो जाया करते थे।

साहब... साहब कहता यहां का उनका पर्सनल पीऑन... बड़े ही अदब से उनके सामने आता है... जबकि उस शहर में चपरासी गेतूराम... बड़ा रूखा रूखा सा था। बड़े साहब सोच में डूब जाते है कि चलो जैसा भी था... अपनी जात का था... पानी... वानी... चाय... वाय... उसके हाथ से पीना... ठीक लगता था।

इस दफ़्तर का चपरासी पानी रख जाता है... बड़े साहब नहीं पीते... चाय ले आता... वो रखी रह जानी।

कल जब चपरासी मनोहर... फाइलें लेकर उनके दफ़्तर में आया... उसके हाथ में एक छोटी सी पुस्तक थी। साहब ने पुछा... ये क्या है तुम्हारे हाथ में ?

गीता है सर...

अरे वाह ! तुम तो बड़े धार्मिक ख्यालों के हो मनोहर !

मनोहर हँस दिया। साहब पर गहरी दृष्टि डाली। अरे मनोहर... एक बात बता तो!

मनोहर फिर हँस दिया। हां... हां... कहिए सर.

अरे भाई तू... किस जात का है... मनोहर ने उनकी बात पूरी कर दी....

यही पूछना चाह रहे हैं न... ? जब से आपने ज्वाईन किया है... न मेरे हाथ से लायी हुई चाय पी. .. न पानी...! मैं तभी समझ गया था सर...सर... जात. .. पात से क्या होता है... बड़े विनम्र भाव से कह रहा हूं... कि आदमी अपनी सोच से बड़ा बनता हैं। सर पानी तो कुदरत की अनमोल देन है... इसके बारे में कहूं...! मनोहर ने हाथ जोड़ दिये... माफ करना... छोटा मुंह बड़ी बात कह गया! बड़े साहब आश्चर्य में डूब गये।

प्रो. नवसंगीत सिंह

हिन्दी व पंजाबी में चौबीस पुस्तकें प्रकाशित। स्नातकोत्तर पंजाबी विभाग, अकाल यूनीवर्सिटी, तलवंडी, साबो (भटिंडा) में प्रोफेसर। मोबा–9417692015

चयन

डीसी ने तहसीलदार को आदेश दिया–'मां जी के लिए कोई साड़ी चाहिए।'

''ठीक है सर।''

शाम को तहसीलदार दस साड़ियां लेकर डीसी आवास पर पहुंचा, तो डीसी ने उनकी ओर देखे बिना ही कहा–'ठीक है, रख दो।'

तहसीलदार ने तो सोचा था कि इन दस में से किसी एक का चयन कर लिया जाएगा, किंतु...

डॉ० अनीता चौधरी

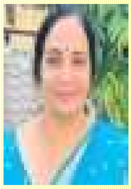

विविध विधाओं की रचनाएँ अनेक पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित एवं आकाशवाणी से प्रसारित। दो कहानी संग्रह प्रकाशित। कई संस्थाओं द्वारा सम्मानित एवं पुरस्कृत। फोन नं० 6395282180

परिणति

आम रास्ते में एक बहुत बड़ा वृक्ष था जो वर्षों से शोभा पा रहा था। उसकी एक डाली को शरारत सूझी, और वह रास्ते की तरफ बढ़ने लगी। कुछ ही दिनों में उसने रास्ते पर अपनी बांहे फैला दीं। सभी राहगीर डाली से झुककर जाने लगे। डाली अहंकार से झूम उठी।

एक दिन उस रास्ते से भीमा गुजर रहा था। भीमा ताकतवर तो था ही अहंकारी भी था। भीमा ने कहा–डाली तुम मेरे रास्ते से हट जाओ।

डाली बोली– नहीं मैं नहीं हटूंगी । तुम्हें इस रास्ते से जाना है तो झुककर जाओ।

''मैं किसी के सामने नहीं झुकता।'' भीमा की बात सुनकर डाली ऐंठ गई।––'' तो फिर जाओ।''

भीमा अपनी ऐंठ में सीधे चलने लगा और डाली से उसका सिर टकरा गया। भीमा बुरी तरह घायल हो गया। भीमा को गुस्सा आया और उसने डाली को पकड़कर तोड़ डाला फिर उसे रास्ते से दूर फेंक दिया।

ऐसा करने में भीमा भी घायल हो गया। राहगीरों ने घायल भीमा को देखा और उसका उपचार करने लगे। सभी बहुत खुश थे, क्योंकि उस डाली से सबको परेशानी होती थी।

तभी एक वृद्ध राहगीर ने एक तरफ टूटी डाली को और दूसरी तरफ घायल भीमा को देखा। दोनों को देखकर वह बिहँसा और बुदबुदाया–अंहकार की परिणति और क्या हो सकती है।

डॉ.घनश्याम मैथिल'अमृत'

जन्म–26 जनवरी 1963 भोपाल

शिक्षा –एम.ए.,एल.एल–बी.।

लेखन विधा–कविता,कहानी,व्यंग्य,समीक्षा, लघुकथा। पांच कृतियां प्रकाशित। अनेक अखिल भारतीय/प्रादेशिक सम्मानों से सम्मानित।

सम्प्रति– वरिष्ठ तकनीशियन पश्चिम–मध्य रेल भोपाल

मोबा–9589251250

दूसरा पहलू

'कल से आज ज्यादा कड़ाके की सर्दी है।'

''हाँ सो तो है।''–दूसरे ने जबाव दिया।

'यानी दो–चार दिन अच्छा दया धर्म होने की उम्मीद है।'

'' हाँ –हाँ बिल्कुल ।''

'कल कहाँ था ?'

' बस अड्डे के सामने वाले खाली मैदान पर।'

''और तू..?''

'रेलवे स्टेशन पुल के नीचे।'

'' कैसा रहा ..?''

' हाँ रात को ग्यारह बजे आये थे दया धर्म संस्था के लोग। दो–दो कम्बल और पांच–पांच सौ रुपये बाँट गए थे।'

''हमारे यहां भी कोई मोटा सेठ आया था स्साले ने कम्बल भी एक ही दी और कुछ नगद माल भी नहीं दिया कंजूस ने।''

' कल अपनी फ़टी हुई कम्बल और हो सके तो अपनी बीबी और एकाध छोटे बच्चे की जुगाड़ कर आ जाना। इससे मोटा सेठ लोगों पर अच्छा असर पड़ता है और मोटा माल मिलने का चांस बढ़ जाता है।'

एक दिन पहले दान में मिली कम्बल को बेचकर दोनों देशी शराब के ठेके पर दारू पीते हुए, हें–हें कर हँसते हुए आने वाले कल की योजना बना रहे थे।

डॉ .कविता भट्ट

शैक्षिक योग्यता–स्नातकोत्तर (दर्शनशास्त्र,योग,अंग्रेजी,समाजकार्य), यूजीसी.नेट1दर्शनशास्त्र,2योग,पीएच.डी. (दर्शन शास्त्र–योग विशेषज्ञ) डिप्लोमा–योग,महिला सशक्तीकरण, आई.टी.आई.

एवार्डेड–जे०आर०एफ०,आईसीपीआर,नयीदिल्ली, जी०आर०एफ०,आईसीपी आर,नयी दिल्ली, पी०डी०एफ० (महिला), यूजीसी,नयी दिल्ली।

अध्यापन–अनुसन्धान अनुभव–क्रमश–8 और 14 वर्ष, दर्शनशास्त्र एवं योग विभाग,हे०न० ब० गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखंड।

विविध विधाओं में 15 पुस्तकें प्रकाशित। कुछ पुस्तकें विश्वविद्यालयीय पाठ्यक्रम में सम्मिलित।सम्पादित–5 पुस्तकें।

उत्तरदायित्व–सलाहकार (कार्यक्रम सलाहकार समिति) एन सी एस सी टी (विज्ञान एवं प्रोद्योगिकी मन्त्रालय), भारतसकार,नईदिल्लीईमेल kavaypriya@gmail-com

जुगनू की चमक

सुबह के समय चिड़ियों के मीठे सुरों के बीच सड़क के किनारे बैंक के बन्द शटर के सामने फर्श पर कम्बल में लेटे बूढ़े भिखिया के कानों मेंएक विनम्र स्वर गूँजा–"और बाबा कैसे हो?" आवाज हमेशा की तरह सतीश की थी।

"ठंड ज्यादा हो गई आजकल बाबू जी, लेकिन जैसे आप हमेशा पेटभर रोटी देते हो, उसी तरह किसी भले मानुष ने कम्बल दे दिया, यह सर्दी कट जाएगी, बस ठीक हूँ।" भिखिया ने काँपते स्वर में जवाब दिया।

सतीश ने सब्जी और अचार के साथ फॉयल पेपर में लिपटी हुई चार रोटियाँ, भिखिया को पकड़ा दीं।

भूखी निगाहों से पैकेट खोलकर वह रोटियों पर झपट पड़ा। जल्दी–जल्दी निवाले मुँह में डालते हुए और अँगुलियाँ चाटते हुए कहने लगा, "बाबूजी भगवान आपको लम्बी उम्र दे। बहुत अच्छी सब्जी बनी है। नाश्ते में कभी–कभी पूड़ी भी मिल जाए तो...", थरथराते स्वर में भिखिया ने कहा।

सतीश की आँखों में एक विचित्र भाव आया, परन्तु मुस्कराते हुए बोला, "क्यों नहीं बाबा, अच्छा हुआ आपने कह दिया। किसी दिन पूड़ी भी खिलाऊँगा।" यह कहकर सतीश घर की ओर मुड़कर धीमे–धीमे चलने लगा। भिखिया उसे जाते हुए प्रतीक्षा भरी निगाहों से देख रहा था।

रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'

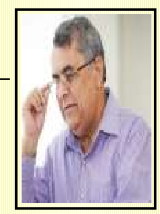

आठ काव्य–संग्रह, तीन हाइकु–संग्रह,एक ताँका और चोका संग्रह,एक ताँका–संग्रह, एक ताँका, सेदोका, चोका संग्रह, एक उपन्यास, दो लघु उपन्यास ,असभ्य नगर(लघुकथा–संग्रह–दो संस्करण), खूँटीपर टँगी आत्मा (व्यंग्यसंग्रह–3 संस्करण), भाषाचन्द्रिका (व्याकरण), लघुकथा का वर्त्तमान परिदृश्य, (लघुकथा –समालोचना), सह–अनुभूति एवं काव्य–शिल्प (काव्य–समालोचना), हाइकु आदि काव्य–धारा(जापानी काव्य विधाओं की समालोचना),फुलिया और मुनिया(बालकथा हिन्दी और अंग्रेजी, अंग्रेजी दो–दो संस्करण, हरियाली और पानी(बालकथा)5 भाषाओं में अनुवाद। सम्पादनः 39 पुस्तकों का।

ईमेलः rdkamboj@gmail-com

दूसरा सरोवर

एक गाँव था। उसी के पास में था स्वच्छ जल का एक सरोवर। गाँव वाले उसी सरोवर का पानी पीते थे। किसी को कोई कष्ट नहीं था। सब खुशहाल थे।

एक बार उजले–उजले कपड़े पहनकर एक आदमी गाँव में आया। उसने सब लोगों को मुखिया

की चौपाल में इकट्ठा करके बहुत अच्छा भाषण दिया। उसने कहा–'सरोवर आपके गाँव से एक मील की दूरी पर है। आप लोगों को पानी लाने के लिए बहुत दिक्कत होती है। मैं जादू के बल पर सरोवर को आपके गाँव के बीच में ला सकता हूँ। जिसे विश्वास न हो वह मेरी परीक्षा ले सकता है। मैं चमत्कार के बल पर अपना रूप–परिवर्तन कर सकता हूं। गाँव के मुखिया मेरे साथ चलें। मेरा चमत्कारी डंडा इनके पास रहेगा। मैं सरोवर में जाऊँगा। ये मेरे चमत्कारी डंडे को जैसे ही जमीन पर पटकेंगे, मैं फिर आदमी का रूप धारण कर लूँगा।'

लोग उसकी बात मान गए। उजले कपड़े किनारे पर रखकर वह पानी में उतरा। मुखिया ने चमत्कारी डंडा जमीन पर पटका। वह आदमी खौफनाक मगरमच्छ बनकर किनारे की ओर बढ़ा। मुखिया सिर पर पैर रखकर भागा। डंडा भी उसके हाथ से गिर गया। अब उस सरोवर पर कोई नहीं जाता। उजले कपड़े आज तक किनारे पर पड़े हैं। गाँव वाले चार मील दूर सरोवर पर जाने लगे हैं।

मसीहा

दाढ़ी के बाल बेतरतीब। सिर पर ढीली–ढाली पगड़ी, बदरंग और चीकट। जिलेसिंह अपने इस हुलिए से भरी भीड़ में पहचाना जा सकता था। दिन भर साइकिलों की मरम्मत करता रहता। राह चलते लोग भी उसे झल्ला कहकर ठिठोली करते। उत्तर में वह फिक् से हँस देता।

डाकुओं द्वारा सरपंच दयाराम की हत्या के बाद से वह अचानक चुप हो गया है, लेकिन उसकी चुप्पी को कोई गम्भीरता से नहीं लेता।

रात के दस बजे. उसके पड़ोसी सतपाल के दरवाज़े पर दस्तक हुई। सतपाल इसे झल्लेसिंह कहकर बुलाता था। जिलेसिंह पगड़ी सँभालते हुए बाहर आया। दो राइफलधारी सतपाल के दरवाज़े के सामने खड़े थे। जिलेसिंह ने टोका–'तुम यहाँ क्या कर रहे? यहाँ से जाओ।'

''ओए खोत्ते दे पुत्तर, भग जा। नहीं तो पण्डत को मारणे वाली गोली तेरे भीतर उतार देणी है।''–यह बात सुनकर सतपाल का तो खून ही सूख गया।

एक ने दरवाज़े पर लात मारी–''अबे दरवज्जा खोल।''

जिलेसिंह चीते जैसी फुर्ती से उसके सामने आ गया–'दरवज्जा नहीं खुलेगा।'

''लै मुर्गी दे बच्चे..।''–दूसरे ने दनादन गोलियाँ बरसा दीं। एक भयानक चीख के साथ जिलेसिंह सतपाल के दरवाज़े के सामने ढेर हो गया हत्यारे स्कूटर पर बैठकर फरार हो गए।

सतपाल बाहर आया। उसकी आँखें विस्फारित रह गई। 'झल्ले.......तू।'

श्रीमती राजबाला 'राज'

जन्म–05 जनवरी 1981 विविध विधाओं में चार पुस्तकें प्रकाशित।साथ ही आकाशवाणी एवं दूरदर्शन से रचना प्रसारित व पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित। दो दर्जन से अधिक संस्थाओं द्वारा सम्मानित। मोबा–8569853471

चिंता————————————

मै डॉक्टर के कमरे के बाहर बैठी अपनी बारी आने की प्रतीक्षा कर रही थी तभी बाहर से कुछ लोगों ने भंयकर शोरगुल के साथ प्रवेश किया।

'हाय बचा लो बापू जी को, बचा लो...।', एक ने चीखते हुए कहा।

डॉक्टर साहब, जल्दी से देखो मेरे बापू जी को क्या हो गया है..., चिल्लाता सा एक और स्वर गूंजा।

'बापू जी ..., बापू जी...' वे सभी रट लगाए जा रहे थे। डॉक्टर ने उन्हें लगभग डांटते हुए चुप रहने को कहा और पूछा, 'ये बताओ, हुआ क्या है इन्हें?'

'डॉक्टर साहब, अभी–अभी सीढ़ियों से गिरकर बेहोश हो गए हैं..., बापू जी...।' रोते हुए से एक ने बताया।

डॉक्टर ने सांत्वना देते हुए तुरंत अपने स्टाफ को उस बुजुर्ग को ऑपरेशन थिएटर में ले जाने के लिए कहा और स्वयं भी चल दिए। उन्हीं के साथ आया एक व्यक्ति, जो अपेक्षाकृत चुपचाप–सा था, मेरे साथ की सीट पर बैठ गया।
मैंने उसे पूछा, आप...?

'जी, मैं पड़ोसी हूं...।', उसने संक्षिप्त–सा उत्तर दिया। मैंने कहा–'बहुत प्यार है इनको अपने बापूजी से। आजकल बुजुर्गों के प्रति ऐसा प्यार देखने को मिलता ही कहां है...।'

''उंह, कैसा प्यार, पैंशन मिलती है बुजुर्ग को अच्छी–खासी, जितना मिलकर पूरा परिवार भी नहीं कमाता। उसी के दम पर ऐश करते हैं, पर परवाह फिर भी नहीं करते बेचारे की...। अब पैंशन हाथ से जाती दिख रही है तो कैसे फड़फड़ाते फिर रहे हैं। नहीं तो बूढ़ा आज मरे या कल इनको क्या...?''

सीताराम गुप्ता

जन्म–06:07:1954। हिन्दी के अतिरिक्त रूसी, उर्दू, फारसी, अरबी व पंजाबी भाषाओं का अध्ययन। टी.वी. प्रेज़ेंटेशन में डिप्लोमा। कविता संग्रह ''मेटामॉफ़ोसिस'' तथा मन की शक्ति द्वारा उपचार विषयक पुस्तक ''मन द्वारा उपचार'' प्रकाशित। दैनिक नवभारत टाइम्स (नई दिल्ली) में द स्पीकिंग ट्री /आनंद योग / कल्पवृक्ष में, दैनिक जागरण में ऊर्जा में व दैनिक ट्रिब्यून (चण्डीगढ़) में आस्था/अंतर्मन में निरंतर स्तंभ लेखन।

मोबा0 नं0 9555622323

अवलंबन

दादा जी एक कुरसी पर बैठे थे और उनसे थोड़ी दूरी पर उनका छह वर्षीय पौत्र खेलने में व्यस्त था। पौत्र को देखकर बार–बार उनकी आँखें नम हो उठती थीं।

दादा जी ने पौत्र को पास बुलाया और उससे पूछा, '' बेटा क्या कर रहे हो?''

पौत्र ने कहा, ''दद्दू खेल रहा हूँ'' और ये कहकर वापस जाने लगा।

दादा जी ने उसे रोक लिया और पुनः पूछा, ''बेटा! पापा की याद आती है?''

''आती है दद्दू '' संक्षिप्त–सा उत्तर देकर पौत्र चुपचाप वहीं दादा जी से सटकर खड़ा हो गया।

अभी कुछ सप्ताह पहले ही तो उसके पिता निरंतर एक वर्ष तक कोविड से संक्रमित रोगियों का उपचार करते हुए स्वयं कोविडग्रस्त होकर एक लंबे संघर्ष के उपरांत अनंत–अज्ञात यात्रा पर प्रस्थान कर गए थे।

अपने पौत्र को देखकर फिर से दादा जी की आँखें भर आईं। दादा जी ने पौत्र से एक और प्रश्न किया, ''बेटा जब पापा की याद आती है तब कैसा लगता है?''

दादा जी की आँखों मे झाँकते हुए पौत्र कुछ देर तक तो चुप रहा फिर एकाएक उसने अपना चेहरा दादा जी के सीने से सटा लिया और अपने कोमल–कोमल से हाथों से दादा जी को कसकर पकड़ लिया।

****

विचार और अनुभव तो जिन्दगी को भी पीछे छोड़ जाते है, शर्त तो क्या चीज़ है? रमेश बतरा

****

मिन्नी मिश्रा

शिक्षा –स्नातकोत्तर अनेक पत्र–पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशितं। सम्मान–लघुकथा श्री सम्मान, कलमकार मंच से, भाषा सहोदरी से, लघुकथा स्टोरी मिरर प्रतियोगिता से, साहित्य विचार प्रतियोगिता आदि से। मोबा–917970931940

मेहनत की रोटी

"देखो, देखो... वो भी हमारी तरह भिखारी ही लगता है पर, देखो, किस तरह शान से न्यूजपेपर पढ़ रहा है ! चलो मित्रों, चलते हैं उसके पास।" सभी भिखारी एक साथ उस लड़के के पास पहुँचे।

"तुम भीख मांगते हो पेट भरने के लिए या पेपर खरीद कर पढने के लिए ?" एक भिखारी ने उस लड़के से पूछा।

दूसरे ने मजाक उड़ाते हुए कहा, "अरे! शौकीन है, भीख मांग कर अपना शौक पूरा कर रहा है हा..हा..हा.."

"हाँ.. भाई, पेट भरने के लिए कुछ तो करना पड़ता है न? रोड पर आ गया हूँ, क्या करूँ! प्राइवेट कम्पनी में नौकरी थी, छूट गई! कंपनी में मात्र तीन हजार रूपये तनख्वाह ...और आसमान छूती मंहगाई ! उफफ ... किसी तरह कमरे का भाड़ा और किराने का बिल ही दे पता था ! बचत के नाम पर कुछ भी नहीं, शुन्य! खैर!
कम्पनी में बड़ा घोटाला हुआ... कम्पनी बंद हो गयी। किस्मत तो मेरी फूटी जो फिर से सड़क पर आ गया! अनाथ जो ठहरा! आजन्म सड़क से गहरा नाता रहा है मेरा! इसी उबड़–खाबड़ सड़क पर खेलकूद कर बड़ा हुआ हूँ।''लड़के ने मुस्कुराते हुए जवाब दिया।

"ठीक किया, जो इधर आ गया। यह धंधा आजकल बहुत फल–फूल रहा है। हाथ ,पैर बिना अधिक हिलाए भी आराम से पेट भर जाता है। न आगे नाथ और न पीछे पगहा है तेरा! फिर, चिंता किस बात की ? बस, हमारी तरह पड़े रहो। देखो, हम दिन में भीख मांगते हैं और रात को अपनी मर्जी का जीते हैं।" सरदार भिखारी ने लड़के को समझाया।

"सुनो ... भीख माँगना अच्छी बात नहीं है, भीख देते वक्त लोग हिकारत भरी नजरों से घूरते हैं।" लड़के ने सरलता से कहा।

''अच्छा...! फिर तू रोड के किनारे बैठकर दिनभर क्या करता रहता है?''

'दिन में बैठकर यहाँ पढाई करता हूँ और शाम को ट्यूशन पढाता हूँ।'–हँसते हुए लड़के ने जबाव दिया।

"अरे यार ... तू हँसता बहुत है।"

'जिंदगी का इम्तिहान है भाई .... हँस कर देने में ही भला है।' पेपर काँख के नीचे दबाते हुए लड़का वहाँ से चल पड़ा ।

डा. राकेश 'चक्र'

प्रख्यात साहित्यकार,। 11 दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित। उ.प्र.हिन्दी संस्थान लखनऊ के बाल साहित्य के सर्वोच्च पुरस्कार बालसाहित्य भारती सहित सरकारी/गैर सरकारी चार दर्जन से अधिक संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत/सम्मानित।

मोबा : 09456201857

पुत्रवधु

वृद्धाश्रम में रह रहे एक वृद्ध से घूँघट ओढ़े हुए एक महिला मिलने आई। उसके हाथ में सामान से भरा एक झोला था।

उस समय वह वृद्ध एकान्त में बैठे विचार मग्न थे। उस महिला ने उनके चरण–स्पर्ष किए तथा झोले में लाए सामान में से खिलाने के लिए देने लगी, लेकिन काफी मान मनौव्वल के बाद भी वृद्ध खाने तथा सामान लेने से इनकार करते रहे।

वृद्धाश्रम के मैनेजर को यह सब देखकर दाल में कुछ काला लगा। वह पास में आये और वृद्ध से विनम्रतापूर्वक बोले, "अनोखे दादा क्या बात है? सब ठीक तो है?."

मैनेजर साहब सब ठीक ही होतो तो यहाँ क्यों आतौ? ये बेचारी मेरे बेटे की बहू अपने मायके से कुछ सामान लाई है खाने–पीने का। मोय सामान नाय चाहिये। जब बेटा नै ही नातौ तोड़ दियौ, तो बहू से ही काँ रिश्ता रह गयौ है। इतना कहते–कहते वृद्ध की आँखों से बरसात होने लगी।

मैनेजर ने अनोखे दादा को समझाते हुए कहा, "दादा ऐसी बहू तो पूजा के योग्य है। यदि आपके बेटे ने नाता तोड़ लिया है, तो बहू तो रिश्तों का प्रेम और फर्ज़ निभा रही है । आप प्रेम से सामान ग्रहण करिए

इतना सुनते ही वृद्ध के चेहरे पर मुस्कान दौड़ गई सोचकर कि कोई तो है अभी अपना।

डॉ. मालती बसंत

शिक्षा– एम.ए.,एम.एड.,एन.डी., डी.सी.एच.,पीएच.डी.,अनेक पत्रपत्रिकाओं में रचनाओं का प्रकाशन एवं आकाश वाणी–दूरदर्शन से प्रसारण। कहानी, लघुकथा,व्यंग्य एवं शोध की दो दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित। दो दर्जन से अधिक संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत। मोबा–9981775190

दर्द की दवा

तीन साल का बच्चा कराहते हुए रो रहा था।अनाथालय में नियुक्त डॉक्टर उसका मुआयना करने लगा–'कहाँ दर्द है है बेटे बताओ तो।'

बच्चे ने आँखें खोलकर इधर–उधर देखा फिर लम्बी सांस लेकर आँखें बन्द कर लीं। उसे सोता देखकर डॉक्टर चले गये।

दूसरे दिन वही डॉक्टर फिर आये। उन्होंने देखा बच्चा बहुत उदास है।

'क्यों बेटे, क्या बात है? रात को भी तुम बहुत रो रहे थे। कहाँ दर्द है, क्या चाहिए तुम्हें?'

"माँ–माँ।"–बच्चा मुँ फाड़कर रो दिया।

बच्चे के दर्द की दवा डॉक्टर के पास नहीं थी।

सत्येंद्र सिंह

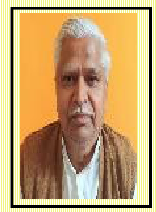

जन्म 01–06–1949 मथुरा (उप्र) वरिष्ठ राजभाषा अधिकारी पद रेलवे से सेवानिवृत्त। कविता, कहानी, लघुकथा, लेख,रिपोर्ताज लेखन। अनेक पत्र–पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। एक काव्य संग्रह प्रकाशित। पं.हरप्रसाद पाठक–स्मृति बाल साहित्य पुरस्कार समिति मथुरा सहित कई संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत। मोबा– 9922993647

ट्यूब लाइट

दो दिन हो गये। रोड की ट्यूब लाइट दिन रात जल रही हैं। कोई देख भी नहीं रहा। जिन लोगों को रात होते ही एक घंटे भी अंधेरा बर्दास्त नहीं होता और तुरंत कई नंबरों व मेल आईडी पर शिकायत ठोक देते हैं, ऐसे कम्पलेंट–मानिया वालों को भी दिन में जलती ट्यूब लाइट दिखाई नहीं दे रही है।

बाबू श्यामप्रसाद को रिटायर हुए भी बीस साल हो गये पर कभी किसी के कामकाज में दखल नहीं दिया। वे देखते आ रहे हैं कि महानगरपालिका के कर्मचारी, सफाई कर्मचारी, सड़क की मरम्मत करने वाले सब अपना काम बड़ी मुस्तैदी से करते हैं, चाहे एक दो दिन विलंब भले ही हो जाए पर कुछ लोग ऐसे

भी हैं कि सड़क पर एक पत्थर तक दिख जाने पर तुरंत शिकायत करने बैठ जाते हैं और काम होने पर खुद शेखी बघारते रहते हैं कि देखा मैंने कम्पलेंट की और तुरंत ट्यूब लाइट जल गई।

बाबू श्यामप्रसाद एक रोडलाइट पोल के पास खड़े कुछ सोच रहे थे, तभी उनकी नजर कुलकर्णी पर पड़ी। वे हल्के से मुस्कुराये और कुलकर्णी को आवाज लगा बैठे,–' अरे कुलकर्णी जी जरा सुनिए।'.

कुलकर्णी अपने नाम के सामने एक बुजुर्ग द्वारा जी सुनकर उनके पास कूद आये।

बोले–'' हाँ बाबूजी बोलिए।''

श्यामप्रसाद जी ने कुलकर्णी जी का ध्यान खींचते हुए ऊपर की ओर इशारा किया। कुलकर्णी थोड़ा अचकचाये और विस्मित होते हुए बोले–'' क्या बाबू जी, आपकी तबीयत तो ठीक है न?''

बाबुजी होठों में ही मुस्कान छुपाते हुए बोले–' अरे भाई कुलकर्णी साहेब दो दिन हो गए, शिकायत नहीं की?'

अब कुलकर्णी और चकित होते हुए बोले, –''किस बात की शिकायत? ट्यूब लाइट तो दिन में भी जल रही है।''

बाबूजी बोले–'यही तो, दो दिन से रोड की सारी ट्यूबलाइट दिन में भी जल रही हैं। रात में नहीं जलतीं तो तुरंत शिकायत करते हो और अब देश की ऊर्जा बर्बाद हो रही है तो कोई शिकायत नहीं. मैं मानता हूं कि आज के हालात में बिजली कर्मचारियों की कमी है, काम का बोझ ज्यादा है, लाइट बंद करना भूल गये होंगे. लेकिन दिन में भी ट्यूब लाइट जलकर जो राष्ट्रीय हानि हो रही है, उसरे बारे में कौन बताएगा? केवल शिकायत करना ही अपना फर्ज नहीं है, बर्बादी रोकना तो परम कर्तव्य है।'

कुलकर्णी थोड़ा संकोच में आ गये। बोले –''बाबूजी मैंने हमेशा ट्यूबलाइट न जलने पर कर्मचारियों की शिकायत ही की है, पर अब शिकायत नहीं अनुरोध करूंगा कि दिन में ट्यूबलाइट बुझादें. मेरी यह शिकायत एक आदर्श शिकायत होगी।''

****

लघुकथा की संरचना में मेरी दृष्टि सदैव एक घटना को यथार्थ के धरातल पर बुनते हुए उसमें सकारात्मक सोच को उभारने की रही है, जो समाज–सापेक्ष हो, पाठकों को तृप्ति दे, सुख दे और अवर्चनीय सन्तोष प्रदान करे। डॉ.सुरेन्द्र गुप्त

****

गिरिजा कुलश्रेष्ठ

खण्डकाव्य, बाल कहानी संग्रह, गीत व कविता संग्रह, कहानी संग्रह, लघुकथा संग्रह आदि की 13 पुस्तकें प्रकाशित। 43 वर्ष छह माह के अध्यापन सेवा के बाद सेवा निवृत्ति। मोबा–8827293206

कितनी पास कितनी दूर

'आप कहाँ से हैं?'

पार्क में बैठी उस अधेड उम्र की महिला ने आखिर पास ही बेंच पर बैठी युवती से पूछ ही लिया जींस–टाप पहने वह युवती वॉक के बाद कुछ देर के लिये बेंच पर बैठ गई थी .हालाँकि उसका ध्यान सिर्फ अपने मोबाइल पर था और ऐसे में उस अपरिचित महिला का बात करना अनावश्यक और अशिष्ट कहा जा सकता था। .

''यूपी से।''––

युवती ने निरपेक्षता से उत्तर देते हुए जिज्ञासा भी दिखाई–''क्यों?''

'नही ऐसे ही पूछा है।'–महिला एक पल के लिये झिझकी–'यूपी में कौनसी जगह...?'

''आगरा से''–

युवती ने इस तरह जबाब दिया जैसे वह उसका आखिरी संवाद हो। पर कुछ सोचकर उसने भी पूछ लिया–''और आप ?''

'मैं तो एमपी में शिवपुरी से हूँ। यहाँ बेटी के पास आई हूँ।'––महिला उत्साहित होकर बोली और विस्तार से परिचय देने लगी–'बेटी इंजीनियर है। सीजीआई में। क्या आप भी ..?'

''नही मेरे हसबैंड हैं।''

'हसबैंड ? यानी यह शादीशुदा है?' –––

महिला चकित हुई। आजकल पहनावे और रंग–ढंग से पता ही नही चलता कि कोई महिला लडकी है या औरत। विवाहिता है या कुँवारी। न बिन्दी न चूडी और न बिछुआ...।ष

ष्कौनसी कम्पनी में ?'

''विप्रो में।''

'अरे हाँ ,विप्रो में ही मेरी ममेरी बहिन का बेटा भी है। लेकिन बहुत बडा शहर है। पता नही कहाँ रहता होगा। कुसम से पता ले आती तो उससे भी मिल लेती।'

''होगा.। यहाँ तो ज्यादातर इंजीनियर ही हैं।''

'आप यहाँ कहाँ रहती हैं?'

''आज़ाद नगर में।''

'अरे मेरी बेटी भी तो आज़ाद नगर में ही है।'

"आजाद नगर में , कहाँ?"

'अल्पना अपार्टमेंट में।'

"अच्छा?"अब भी युवती को महिला की बातों में रुचि नहीं थी पर महिला उत्साहित होकर बोली–'लो फिर तो हम पडोसनें हुई पर आपको कभी देखा नही।

"हाँ वो...एक तो दूसरी लिफ्ट से आना–जाना होता है फिर....।"

'फिर!दरवाजे भी हमेशा बन्द रहते हैं।' महिला ने बात पूरी की।

इसके बाद दोनों साथ–साथ आई । कुछ महिला की जिज्ञासा और कुछ शिष्टाचारवश युवती उसे अपना फ्लैट दिखाने ले गई। कॉलबेल की आवाज पर एक युवक ने दरवाजा खोला .पहले पत्नी को देखा फिर नवागन्तुका को–"अरे ,मौसी आप यहाँ कैसे?" युवक आश्चर्य से भर उठा।

' अरे यह तो अभिषेक है, कुसम का बेटा।' . महिला ने युवती की ओर खुशी के अतिरेक के साथ देखा। .

अगले पल वह महिला के पैरों में झुक गया . युवती भी।

'कुसम से तेरा पता और नम्बर लेना भूल गई बेटा, पर तू इतने पास होगा यह तो सोचा भी नही था।'–महिला खुशी से विह्वल होकर बोली–––

'अगर परस्पर संवाद न हो तो लोग पास रहकर भी कितने दूर होते हैं। नही ?'

"सच कह रही हो मौसीजी ."

दिलीप भाटिया

मैं एक रिटायर्ड परमाणुवैज्ञानिक , अगली 26 दिसंबर को 75 वें वर्ष में प्रवेश करूंगा। जीवन में 59 बार रक्तदान किया। रक्तदान पर बहुत उपदेश लिखे बोले जाते रहते हैं। मैं कथनी की अपेक्षा करनी में भरोसा करता हूं। जाने अंजाने व्यक्तियों के प्राण बचा कर एक संतोष का भाव सा होता है। मोबा– 9461591498

पिक नहीं ली?

कृष्णा बगल वाले फ्लैट में ममता दी के पास कुछ काम से गई तो पता चला कि ममता दी तो सपरिवार आउट ऑफ स्टेशन है। बाई भी खाना बनाने आज नहीं आ पाई। ममता के विधुर पापा अपनी इस इकलौती बेटी के परिवार के साथ ही रहते हैं। कृष्णा ने देखा अंकल जी बिस्किट नमकीन खा रहे है। कृष्णा ने सलाह दी होटल से टिफिन मंगवा लेते। अंकल ने कहा उन्हें होटल का खाना हजम नहीं होता। कृष्णा ने वापिस अपने फ्लैट में आकर बगल के फ्लैट वाली जागृति को फोन कर बतलाया कि कैलाश अंकल तो आज नमकीन बिस्किट से पेट भरने की कोशिश कर रहे हैं। ममता मैडम बाहर घूमने गई हैं। जागृति सुनकर अचंभित रह गई। अभी फोन रखती हूं कृष्णा, कुछ जरूरी काम है। बाद में बात करती हूं।

जागृति कैलाश अंकल के यहां गई–"अंकल जी मेरे साथ चलिए। भोजन तैयार है। आज आपके साथ ही खायेंगे।"

कैलाश अंकल एकदम से चुप से हो गए। लेकिन जागृति उन्हें सम्मान प्यार आदर सहित अपने घर ले आई। भोजन करवाया। साथ ही आदेश सा भी कि अंकल जब तक ममता लौट कर नहीं आती है आप दोनों समय हमारे साथ ही भोजन करेंगे। मेरे होते हुए आप बाई के भरोसे मत रहिए। सुबह का नाश्ता मैं स्वयं आपको भेज दूंगी क्योंकि सुबह आप पूजा में व्यस्त रहते हैं। ममता को आने तो दो, दीदी से तो मैं लड़ाई कर लूंगी कि मुझे बता कर क्यों नहीं गई।

कैलाश अंकल निशब्द थे बस जागृति को भीगी पलकों से आशीर्वाद देते रहे। शाम को किसी से कृष्णा को पता चल गया कि अंकल को जागृति ने भोजन करवाया था। फोन किया इतने बड़े अहसान करने की कोई पिक व्हाट्सएप पर क्यों नहीं पोस्ट की।

जागृति का उत्तर था–" कृष्णा, इसमें अहसान की क्या बात। पिक खींच कर अंकल को शर्मिंदा करती क्या। अपने पापाजी को भी तो खिलाती हूं। किस किस की पिक खींच कर तमाशा करूं। सॉरी कृष्णा, मैने मात्र अपना फर्ज निभाया है। भलाई के गीत नही गाए जाते। पिक सेल्फी इन सब दिखाबों का तो मेरे दिमाग में आता ही नहीं। कृष्णा चुप थी।

नीतू सुदीप्ति नित्या

हिंदी और भोजपुरी की लेखिका हैं। दो कथा संग्रह और भोजपुरी में एक उपन्यास प्रकाशित हो चुका है। साहित्यप्रीत डॉट कॉम की संपादक और दो यू ट्यूब चौनल की संचालक हैं। अनेक साहित्यिक संस्थाओं से सम्मानित और पुरस्कृत हो चुकी हैं मोबा–7256885441

धूप छाँव वाला चश्मा

– छोटी पोती ने सोहनलाल के चश्मे के ग्लास तोड़ दिए । उन्होंने धूप –छाँव वाले कांच के चश्मे

बेटे से बनवा देने के लिए कहा ।

बेटा चिढ़ गया, "जब आप खुद कमाते थे तो सादा चश्मा पहनते थे अब मेरी कमाई पर आपको सनग्लास चाहिए ! वाह रे बुढऊ के फैशन !"

बहू ने भी चार बातें सुना दी। पत्नी भी सोहनलाल पर बरस पड़ी, मगर वह आँखें बंद किए सब सुनते रहे। बिना चश्मे के उन्हें धुंधुला दिख रहा था। बाहर के सारे काम पत्नी करने लगी ।

बेटा सादा चश्मा पर अड़ा था । इसी तनातनी में तीन दिन निकल गए। बिना चश्मे के कारण सोहनलाल को सिरदर्द और आँखों से पानी गिरने लगा, लेकिन वह भी अपनी जिद पर अड़े थे।

परेशान पत्नी उन्हें समझाने लगी, "देखो जी, आप तीन दिन से अंधे बने बैठे हो। क्यों धूप वाले चश्मे की रट लगा रहे हो ? सादा चश्मा बनवा लो।"

"पार्वती, मैं सनग्लास ही लूँगा बेटा खरीद कर नहीं देगा तो कोई बात नहीं। 15 दिन बाद मेरी पेंशन मिलेगी न उसमें से ही खरीद लूंगा। इस महीने तुम अपने लिए कुछ मत खरीदना वह चश्मा महंगा आता है।"

"तो इतने दिन आप बिना चश्मे के रहोगे?"

"हाँ !"

"आप बच्चों की तरह क्यों कर रहे हो? बेटा–बहू दोनों परेशान है?"

"होने दो उन्हें परेशान। मैं दोनों का व्यवहार जानता हूँ। अभी ही मुझे या तुम्हें बहू सिर्फ तीन रोटियाँ गिन कर देती है। मुझे कभी–कभी चार रोटियाँ खाने का मन करता है, पर डर के कारण नहीं माँगता। उस समय मुझे बहुत दुःख होता है मेरी आँखों में आंसू आ जाते हैं। कभी –कभी तुमने मुझे पकड़ भी लिया है। उस समय मैं कचरा पड़ने का बहाना कर देता हूँ। सनग्लास वाला चश्मा रहेगा न तो कोई मेरे आंसू नहीं देख पाएगा कृ" बंद पलकों की कोर से सोहनलाल के आंसू झिलमिला पड़े ।

पार्वती फफक पड़ी उसके साथ भी तो यही होता है। बगल के कमरे में चाय पी रहे बेटे – बहू सब सुन रहे थे। बहू पर तो कुछ प्रभाव नहीं पड़ा, मगर बेटे का दिमाग सुन्न हो गया था।

****

लघुकथा भी अन्य विधाओं की भाँति किसी विषय विशेष को रेशे–रेशे की पड़ताल करने में सक्षम है। सुकेश साहनी

सुशील चावला,

सिंडीकेट बैंक से सेवानिवृत्त वरिष्ठ प्रबन्धक। लेखन यात्रा दैनिक ट्रिब्यून चंडीगढ़ से आरम्भ हुई थी। लघुकथा के क्षेत्र में अधिक सक्रिय। मोबा–9996548555

अकड़ी हुई गर्दन

शाम का समय था, रोज़ की तरह मिश्राजी दफ्तर से वापिस घर दाखिल हुए। उन्होंने सामान के झोले मिश्राइन को पकड़ाए और सोफे पर फैल कर बैठ गए। कुछ देर बाद रोज़ की तरह मिश्राइन दो कप चाय बना कर ले आई और उनके सामने बैठ गई। चाय की चुस्कियों के बीच दोनों हल्की फुल्की बातें करने लगे। रोज़ की तरह मिश्रा जी दफ्तर की बातें बताने लगे। मिश्राजी ने अपनी गर्दन अकड़ा कर बताया–''आज दफ्तर में अपना बिल पास कराने के लिए एक ठेकेदार मुझे दस हज़ार की रिश्वत दे रहा था, मैंने वो पैसे उसके मुंह पर मारे और कहा रामनारायण मिश्रा की ईमानदारी कोई नहीं खरीद सकता।''

उन्होंने गर्दन को थोड़ा ओर अकड़ा कर गर्व से अपनी पत्नी को देखा। वो कुछ नहीं बोली बस हल्के से मुस्करा दी।

चाय पी कर मिश्रा जी जो सामान लाए थे उसका बिल चेक करने लगे। बिल के टोटल में फर्क था, बनिये ने टोटल में सौ रुपये कम लगाए थे। पहले तो उन्होंने सोचा कल जाते हुए बनिए को सौ रुपये पकड़ाते जाएंगे, फिर सोचा छोड़ो क्या फर्क पड़ता है। उन्होंने मुस्करा कर पत्नी को बिल में बनिए की गलती के बारे में बताया और बोले,–''मैं तो सोच रहा हूँ चुप ही रहूं। उसे क्या फर्क पड़ता है,सालों से हमसे कमा रहा है।''

मिश्राइन ने हैरानी से मिश्रा जी को देखा और बिफर कर बोली,–'अब कहाँ गई आपकी ईमानदारी जिसकी तारीफों को सुन सुन के मेरे कान पक गए हैं। ईमान खराब ही करना था तो सौ रुपयों की बजाए उन लाखों रुपयों की रिश्वत पर क्यों नहीं किया जो आप दफ्तर में समय समय पर ठुकराते रहे हो। कम से कम हम और हमारे बच्चे ऐसी गरीबी और ज़िल्लत भरी ज़िन्दगी तो ना जीते।' कहकर मिश्राइन पल्लू से मुँह ढक कर रोती हुई भीतर चली गई।

मिश्राजी हक्के बक्के बैठे रह गए। उन्होंने एक बार अपने टूटे फूटे जर्जर मकान, फ़टे हुए सोफे, गरीबी की घोषणा करते दूसरे सामान और पत्नी की पुरानी घिसी हुई साड़ी को देखा। उनके कंधे और गर्दन दोनों झुक गए।

डॉ संतोष शर्मा

जन्म–15 सितम्बर 1953 अजमेर। शिक्षा–एम.ए.(राजनीति विज्ञान,पत्रकारिता, हिन्दीसाहित्य,मानवअधिकार)आकाशवाणी में उपनिदेशक पद से सेवानिवृत्त।विविध विधाओं में कई पुस्तकें प्रकाशित। अनेक संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत।

मोबा–9833351316

श्रद्धांजलि

अस्पताल के कौरोना वार्ड में शवों को सीधे श्मशानघाट ले जाने की व्यवस्था की जा रही थी ।गेट के बाहर काफी भीड़ जमा थी , किन्तु किसी को प्रवेश की इजाज़त नहीं थी।वे लोग दहाड़े मार मार कर रो रहे थे जिनके प्रिय जन इस महामारी के शिकार हो चुके थे ।इन्हीं में से एक थे मिस्टर आर. ऐन. सिन्हा। अभी अभी कार से उतरकर वे गेट के पास आए और जब सिक्योरिटी गार्ड ने उन्हें अंदर आने से मना किया तो वे उसे थोड़ा अलग ले गए ,उससे हाथ मिलाया, इसी बीच शायद हथेलियों के मध्य लेनदेन हो गया। गेटकीपर ने उन्हें सैल्यूट मारा, सिन्हा जी अपनी कार में बैठे और अस्पताल में दाखिल हो गए।

बहुत ही दुखद मुद्रा बनाते हुए वे हॉस्पिटल के इन्चार्ज से मिले, शायद उससे भी उन्होंने अपने दिवंगत पिता के लिए कुछ कहते हुए हाथ मिलाया और तब वार्डबॉय को बुलाया गया।

वार्ड बॉय के साथ श्रीसिन्हा आगे हॉल की तरफ गए। उन्होंने पूरा सुरक्षा कवच पहना हाथ में ग्लोव्स पहने और साथ साथ चलते हुए वार्ड बॉय से भी उन्होंने हाथ ही मिलाया।

सिन्हा साहब जिस तरह से बार–बार आंखें पौंछ रहे थे लग रहा था वे पिता के दुख से बहुत ही विचलित हैं। उनका क्रंदन सबको और भी शोक में कर रहा था। बार–बार कह रहे थे बाबूजी आप कैसे चले गए हम सब को छोड़कर। हम आपकी सेवा भी नहीं कर सके। आज मेरी अंतिम श्रद्धांजलि तो आप स्वीकार कर लो।

वार्ड बॉय अंदर से स्ट्रैचर लाया जिस पर एक चादर में लिपटी हुई थी सिन्हा जी के पिताजी की लाश। उसे एक छोटे कमरे में ले जाया गया। जब वार्ड बॉय ने चादर हटाई तो एक बार को सिन्हा साहब सहम गए। फिर उन्होंने संभल कर वार्डबॉय को इशारा किया वह छोटे कमरे से बाहर आ गया।

सिन्हा साहब ने दरवाज़ा अंदर से बंद कर लिया। अपना सुरक्षा कवच अच्छी तरह से पहना। लाश पर से चादर को पूरी तरह हटा कर उसके पजामे की जेब में अपना हाथ डाला, निराशा हाथ लगने पर दूसरी जेब में हाथ डाला। इस बार चाबी का गुच्छा उन्हें मिल चुका था।

संतोष की सांस लेते हुए उन्होंने अपना हाथ बाहर निकाल कर चाबी के गुच्छे को सैनिटाइजर से नहला दिया और उसे अपनी जेब के हवाले किया। फिर दूसरी जेब से एक कागज और इंक पैड निकाला, मृत पिता के हाथ के अंगूठे को पैड पर दबाकर पेपर पर यथा स्थान अंगूठे का प्रिंट लिया और फिर दोनों चीजें अपने कुर्ते की जेब के हवाले की। सैनिटाइजर से अपने ग्लौव वाले हाथ साफ किए और फिर गमगीन चेहरा लिए छोटे कमरे से बाहर आए। वार्डबॉय ने चुपचाप स्ट्रेचर पर रखी लाश को पुनः चादर से ढक दिया और उसे अंदर ले गया ।

जब सिन्हा जी गेट के बाहर आए तो कार की खिड़की के ग्लास कुछ नीचा करके चौकीदार से बोले –मैंने पिता को अंतिम श्रद्धांजलि दे दी है इसके लिए आपको धन्यवाद।

चौकीदार ने सलाम किया। पिताजी की आत्मा यह सुन रही थी, एक विद्रूप हँसी हँसकर वह उड़ चली।

रमेश प्रसून

वरिष्ठ साहित्यकार, पत्रकार। पश्चिमांचल विद्युत वितरण निगम से सेवानिवृत्त। विविध विधाओं में पुस्तकें प्रकाशित। अनेक पत्र–पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। कई संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत। मोबाइल 9259269007

कैसा–कैसा है यह आदमी

लैपटॉप पर ऑनलाइन पढ़ाई करते–करते ऊब जाने पर या थोड़ी–सी फ़ुर्सत पाकर बी०ई० का छात्र भाई तथा इन्टर की छात्रा बहिन प्रायः आपस में क्विज खेलने लगते। समस्या पूर्तियों के हल खोजने लगते या नये–पुराने विभिन्न विषयों पर आवश्यक–अनावश्यक बहस करने लगते।

ऐसे ही क्षणों में भाई ने बहिन के आगे प्रश्न उछाल दिया कि आदमी? कैसा–कैसा है यह आदमी, जो अपनी प्रचलित प्रवृत्ति और मनोवृत्ति के अनुसार समय–समय पर प्रायः किस प्रकार आदमीयत छोड़ कर बाज़ और गिद्ध, शेर और गीदड़ ,घोड़ा और गधा तथा

सॉप और केंचुआ के रूप में नज़र आने लगता है? बहिन ने उत्तेजित होकर बड़ी सावधानी से सटीक उत्तर दिए–

– बाज़ की तरह वांछित को प्राप्त करने के लिए, इच्छाओं का झपट्टा मारते–मारते आदमी अन्ततः मन से गिद्ध जैसा हो जाता है जिसका जीवन सड़े–गले मॉस को ही पाने और खाने में नष्ट हो जाता है।

सिद्धान्तों के नाम पर क्रान्ति और परिवर्तन के लिए प्रदाताओं के विरुद्ध भीड़ में शेर की तरह दहाड़ने वाले आन्दोलनकारी, आन्दोलन के उत्कर्ष पर पहुंचते ही छद्म सौदेबाजी के अन्तर्गत सर्वहित की आड़ में निजी लाभ और लोभ के वशीभूत होकर गीदड़ की तरह अपना रुख़ अचानक मोड़ लेते हैं। शेर और गीदड़ के भ्रम से अनजान भीड़ के नारे धुँये की भॉति हवा में ही गुम होकर रह जाते हैं।

भौतिक प्रगति और विकास की अंधी दौड़ में अपने को घोड़ा समझकर दौड़ता हुआ आदमी, दौड़ते–दौड़ते एक दिन वास्तव में मात्र गधा बन कर रह जाता है। –

मूलतः आदमी का हश्र उस केंचुए की तरह ही होता है, जो जिस मिट्टी में जन्म लेता है, जिस मिट्टी में से खाता है और जिस मिट्टी में ही मिल जाता है लेकिन व्यवहार में वह आदमी, अपने प्रश्रयदाता, अपने पालनकर्ता और पोषणकर्ता को ही सॉप की भॉति दंश मारने से चूकता नहीं।

निष्कर्षतः आदमीयत से दूर हुआ आदमी व्यवहार में, बाज़, गिद्ध,शेर, गीदड़, घोड़ा, गधा और सॉप–केंचुए की वृत्तियों से अधिक कुछ नहीं।***

सुधा गोयल

जन्म–08 अप्रेल 1948, विविध विधाओं की कई दर्जन पुस्तकें प्रकाशित। अनेक साहित्यिक संस्थाओं में पदाधिकारी। कई दर्जन संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत।

मोबा–9917869962

छत

बरसात आने में एक महीना है। मैं सोचता हूं क्यों न इस बार छत बदलवा लूं। हर बरसात में टपकती है। कहीं एक चारपाई भर भी जगह नहीं बचती। बच्चों–बड़ो सभी को परेशानी होती है। सारी रात इधर से उधर भागते हुए काटनी पड़ती है। कुछ पैसे भी जमा हो गए हैं। उधर बच्चों के दाखिले भी हो चुके हैं। जरुरत पड़ी तो कुछ पैसे भविष्य निधि में से निकाल लूंगा।

पत्नी भी मेरे इस विचार से सहमत हैं। अगले ही दिन से मैं भाग दौड़ में लग जाता हूं। ईंट सीमेंट और बजरी आते आते सारा पैसा चुक जाता है। मैं भविष्य निधि से लॉन लेता हूं। अगले ही दिन पिताजी को दिल का दौरा पड़ता है और स्वर्गवासी हो जाते हैं। भविष्य निधि के पैसों से पिताजी का अंतिम संस्कार करता हूं।

ब्राह्मण भोज के बाद मेहमान जा चुके हैं। पूरे तेरह दिन बाद मैं निश्चिंतता की सांस लेता हूं। मेरे दिमाग में फिर छत घूमने लगती है। तभी पत्नी दौड़ती हुई आती है और बताती है कि महीनों से बीमार पड़ीं मांजी ने भी दम तोड़ दिया है। यह सुनकर मुझे गश आने को होता है। पत्नी किसी प्रकार संभाल लेती है।

पड़ोसी नातेदार फिर इकट्ठे होते हैं। मैं सिर झुकाए चुपचाप बैठा हूं। सब मां बाप के अटूट प्यार की चर्चा कर रहे हैं। कुछ मुझे सांत्वना देने का प्रयास कर रहे हैं पर उन्हें क्या मालूम कि मैं कैसी दुश्चिंताओं में घिरा हुआ हूं। काश! मां की छत्र छाया अभी कुछ और दिन बनी रहती। दुबारा पैसों की व्यवस्था कहां से करूं?सहन में छत के लिए पड़ा सामान मुझे मुंह चिढ़ाने लगता है।

अब मैंने मां के अंतिम संस्कार के लिए उपाय सोच लिया है। मां के अंतिम संस्कार में शामिल भीड़ को भेदता मैं बाहर आ सीधे ईंट बजरी और सीमेंट बेचने वाले की दुकान पर पहुंच कर सौदा कर एडवांस कुछ रकम ले आता हूं।

मुझे एहसास होता है कि मेरी नियति बिना छत की है और सचमुच मेरे सिर से साया......।***

डॉ.अशोक भाटिया

जन्म 5 जनवरी 1955 को अंबाला छावनी,में। कुरुक्षेत्र वि.विद्यालय, कुरुक्षेत्र से हिंदी में एम.ए., एम. फिल और पी.एचडी की। तत्पश्चात विभिन्न राजकीय शिक्षण संस्थानों में कार्य करते हुए एसोसिएट प्रोफेसर के पद से सेवानिवृत्त हुए।

विभिन्न विधओं की एक दर्जन से अधिक पुस्तकें प्रकाशित। हरियाणा साहित्य अकादमी सहित कई संस्थाओं द्वारा सम्मानित/पुरस्कृत।

मोबा–9416152100

दिल की बात

पिछली बार जब मैं गुप्ता जी के ऑफिस गया, तो वहाँ एक नई क्लर्क आ चुकी थी। हल्की–सी झलक

में वह मुझे आकर्षक लगी थी।

कल जब मैं गुप्ता जी के ऑफिस में कागजात लेने जा रहा था, तो मन के कोने में वह फाइलों वाली लड़की भी बैठी हुई थी।

''नमस्ते।'' मुझे देखते ही वह अदब से बोली।

''नमस्ते, गुप्ता जी कहाँ हैं?''

''साथ वाले कमरे में गये हैं। बैठिये आप।''

उसका संकेत मनमोहक था। मैं विश्वास से कह सकता हूँ कि कोई भी आदमी उसे देखकर उसके सौन्दर्य से जरूर पिघलने लगेगा। एक बार तो मैं भी अपना सब काम भूलकर वहाँ बैठ जाना चाहता था, पर नहीं। 'धन्यवाद' कहकर मैं साथ वाले कमरे में चल दिया। लगा कि उसकी बड़ी–बड़ी आँखें मुझे पीछे खींच रही हैं।

थोड़ी देर बाद मैं गुप्ता जी के साथ आया, तो वह फाइलों वाली लड़की चाय पी रही थी। गुप्ताजी ने दराज से पुलिंदा निकालते हुए कहा– 'ये रहे आपके कागजात।'

कागज लेकर फौरन खड़े होते हुए मैंने कहा – 'भाई जान,ज़रा जल्दी जाना है। फिर आऊँगा।'

मैं बाहर जाने लगा, तो कोने में बैठी वह लड़की बोली–'चाय पीजिये।'

एकबारगी चाहा कि बैठ जाऊं, लेकिन बहुत जरूरी काम था, इसलिये 'फिर कभी सही' कहकर मैं बाहर आ गया। मेरे मन में वह लड़की गड़–सी गई थी। शाम को उसी की मुद्राओं और चाय की ऑफ़र के आस–पास घूमता मैं बाजार जा रहा था कि अचानक गुप्ताजी मिल गये।

''और सुनाइये गुप्ताजी, क्या हाल हैं ?''

''ठीक है...वो कागज़ ठीक टाइप हो गये न?''

''ठीक हो गये। अच्छा गुप्ताजी, आपके दफ्तर में जो नई लड़की...''

गुप्ताजी बीच में ही बोल उठे– 'हाँ, वह कह रही थी कि वे जो आपके दोस्त आज आये थे...''

''हाँ क्या?'' मेरे दिल की धड़कन तेज हो गई थी...

''हो सके, तो उनसे टाइप का कुछ काम मुझे भी दिला देना...।''***

****

एक श्रेष्ठ रचना वह है जिसमे पाठक की सोच, भावना और संवेदना को सही दिशा में प्रभावित करने की क्षमता हो।

* **अशोक भाटिया**

****

निर्देश निधि

शिक्षा – एम फिल (इतिहास)
कहानी, कविता, संस्मरण, समसामयिक लेख एवं लघुकथाएँ विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित एवं आकाशवचाणी से प्रसयारित। दो कहानी संग्रह प्रकाशित। 'बुलंदप्रभा' साहित्यिक त्रैमासिक मैं उपसंपादकत्रैमासिक पत्रिका "प्रगति" का सम्पादन। कई संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत। मोबा–9358488084

हमें नहीं लागत है सर्दी, गर्मी

सर्दी के सघन धुंधलके ने सूरज का घमंड पीस कर रख रखा था। ऐसे में वह दस ग्यारह बरस का सांवला, बड़ी–बड़ी आँखों वाला, पतला दुबला सा बच्चा, एक टोकरी में हरी पत्तेदार ताजी–ताजी सब्जियाँ लिए नए बरस की कड़कड़ाती सर्दी में हांक लगाता कॉलोनी में घूम रहा था।

"ताज़ी सब्जियाँ ले लो, ताज़ी सब्जियाँ ।"

एक फटी बनियान के ऊपर झीनी सी शर्ट और अपने साइज़ से थोड़ी बड़ी, जगह जगह से कटी फटी पैंट, और पैरों में अपने साइज़ से बहुत बड़ी चप्पल पहने था जिनमें एक चप्पल की टूटी तनी को तले में सेफ़्टी पिन के माध्यम से साधा हुआ था । घने उलझे हुए धूप में सुनहरे पड़ गए बाल उसके सिर पर प्राकृतिक टोपी बना रहे थे।

अपने हाथों की नीली पड़ गई उँगलियों से सब्जी की टोकरी थामे वह बच्चा उन आधे अधूरे कपड़ों में बुरी तरह काँप रहा था।

उस पर तरस खाकर रूही ने उसकी सारी ही सब्जियाँ खरीद ली और बहुत बड़ा उपकारी होने का भाव पाले सब्जियों के पैसों के साथ अपने बेटे बबलू की जर्सी, एक जींस और एक कैप उसे देने के लिए जाने लगी। पर उसका बेटा बबलू अपने कपड़े उसे दिये जाने के विरोध में बुरी तरह चीख–चीख कर कह रहा था–

''मम्मी मैं अपने कपड़े किसी को नहीं दूंगा।" वह कपड़ों को रूही के हाथों से खींच भी रहा था।

उसकी आवाज़ें बाहर दरवाजे पर खड़े सर्दी से काँपते उस साँवले बच्चे के कानों तक भी पहुँच रहीं थीं।

रूही ने बबलू को डांटा और कपड़े उस लड़के को देने चली गई।

लड़के ने सब्जियों के पैसे तो ले लिए पर वह कपड़े लेने से मना करने लगा। रूही ने ज़िद करके उसे वो कपड़े ले लेने पर विवश कर दिया। वह बेमन से ही कपड़े अपने हाथ में लिए चला गया ।

थोड़ी देर बाद रूही की कामवाली बाई आई

तो रूही ने उसके हाथों में बबलू के वही कपड़े देखे जो उसने थोड़ी देर पहले उस लड़के को दिये थे। उसने हैरानी से पूछा–''राधा तुझे कहाँ से मिले ये कपड़े?"

"बीबी जी आपके गेट के बाहर एक,लड़का लिए बैठा था। उसी ने दिये। बबलू भैया के थे न, मैंने पहचान लिए और ले लिए उसके हाथ से। फिर वह न जाने क्यों बोला कि–"भीतर वाली माई का बेटा बहुत रोवत रहा इन कपड़न की खातिर, माई से कही हमरा तन सर्दी, गर्मी, बरसात कौंनो को भाव नहीं देत। अपने बेटा का जी न दुखाई हमार खातिर। हमें नाहीं लागत है सर्दी, गर्मी ।***

डॉ.दिनेश पाठक 'शशि'

जन्म–10 जुलाई 1957

शिक्षा–विद्युत इंजीनियरिंग, एम.ए. हिन्दी, पी–एच.डी। विभिन्न विधाओं की तीस पुस्तकें प्रकाशित। 16 पुस्तक एवं नौ पत्र–पत्रिकाओं का संपादन। पं.हरप्रसाद पाठक–स्मृति बाल साहित्य पुरस्कार समिति का सचिव एवं तुलसी साहित्य–संस्कृति अकादमी न्यास का संरक्षक।दो बार भारत सरकार तथा दो बार उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा सहित तीन दर्जन से अधिक संस्थाओं द्वारा पुरस्कृत।

मोबा–9870631805

सत्य का बोध

कभी–कभी आपदा भी मनुष्य के जीवन में सकारात्मक परिवर्तन ला सकती है।

लगभग 5 वर्ष पूर्व पत्नी ने यह कहकर मुझे अपने माता –पिता से अलग कर दिया था कि अगर तुम इस घर को छोड़कर अन्यत्र रहने का प्रबन्ध नहीं करोगे तो मैं आत्महत्या कर लूंगी।

मैंने पत्नी को सभी प्रकार से बहुत समझाने का प्रयास किया था। बुजुर्गों के साथ रहने के अनेक फायदे भी गिनाये थे किन्तु पत्नी अपने निर्णय पर अटल थी। हारकर, दु:खी मन से मुझे अपने माता–पिता का दो सौ वर्ग गज में बना दो मंजिला मकान छोड़ कर किराये पर एक कमरे का सैट लेकर रहना पड़ा था।

वैश्विक महामारी कोरोना ने जानवरों के पिंजड़े की भाँति ही मनुष्यों को भी अपने–अपने घरों में कैद रहने पर मजबूर कर दिया है। इस वर्ष की विभीषिका द्वारा हर तरफ मचाई त्राहि–त्राहि से तो हर प्राणी का हृदय मृत्यु–भय से अन्दर ही अन्दर कांप उठा है। महीनों के लॉकडाउन के कारण मैं भी अपने वृद्ध माता पिता के बारे में सोच–सोच कर परेशान था कि ऐसे हालात में वे किस तरह सारे प्रबन्ध कर पा रहे होंगे।

मैं चिंतामग्न, वृद्ध माता–पिता की कुछ सहायता करने के बारे में सोच ही रहा था कि पत्नी ने पास आकर मेरे कंधे पर अपना हाथ रख दिया–' क्या सोच रहे हो विमल?'

''कुछ नहीं, बस ऐसे ही।''– मैंने पत्नी को अपनी चिंता बताना उचित न समझकर टालने का प्रयास किया। ''फिर से यह कोई नाटक रचे, उससे तो अच्छा है कि इससे माता–पिता के बारे में कुछ कहा ही न जाय।''–मैने सोचा।

''विमल, नाराज न होओ तो तुमसे एक बात कहना चाहती हूँ ।''–पत्नी का ऐसा नम्र स्वर मैंने पहले कभी न सुना था। मैंने उसके चेहरे की ओर देखा–'कहो, अब और क्या कहना चाहती हो?'– गत 5 वर्ष में एक दिन को भी मैं उस दिन के उसके व्यवहार की कड़ुआहट को अभी तक निगल नहीं पाया था, जब मुझे वह घर छोड़ने पर मजबूर होना पड़ा था।

''विमल, मैं अपने उसी पुराने घर में वापस जाना चाहती हूँ, अपने वृद्ध सास–ससुर के पास।'' सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ –'क्यों, वहाँ जाकर अब तुम्हारे सपने पूरे हो जायेंगे? या कुछ और कोई नाटक करना शेष रह गया है अभी?'' मेरी कड़ुआहट बाहर आ ही गई।

''नहीं विमल, तुम गलत समझ रहे हो। बनावटी दिखावे के जीवन से अब मेरा मोहभंग हो गया है। प्रतिदिन अनेक जिन्दगियों को लीलते जा रहे इस कोरोना ने मुझे जीवन की वास्तविकता का बोध करा दिया है।

आपको और मुझ को थोड़ा बुखार और खाँसी क्या हुई, पूरे मौहल्ले ने घर की ओर झांकना भी छोड़ दिया। आपके बैंक चले जाने के बाद पूरी कॉलोनी की महिलाओं का जमघट जोड़कर दिनभर मैं जिनके साथ गप्प–सड़ाका करती थी उन्होंने भी एक बार आकर नहीं पूछा कि बहन, किसी सहायता की जरूरत तो नहीं है।''

'और तुम्हारे सपनों का क्या होगा, जिनके पूरा होने में सास–ससुर की सेवा बाधक बन जाती है?'–मैंने व्यंग्य किया।

''जीवन रहेगा तो सपने वहाँ भी भी पूरे किए जा सकेंगे विमल।''–भयभीत मुद्रा में एक गहरी सांस लेते हुए पत्नी ने मेरी ओर देखा।

''अब मैं अपने वृद्ध सास–ससुर की सेवा करते हुए ही जीना चाहती हूँ किन्तु यदि किन्हीं कारणों से मैं वृद्ध सास ससुर की सेवा से वंचित रह गई तो अपने आप को कभी माफ नहीं कर पाऊगी।''

उसे सत्य का बोध हो चुका था और मैं उसके चेहरे को एकटक देख रहा था। ***

आलेख–

कहानी का बीज रूप नहीं है लघुकथा

सुकेश साहनी

लघुकथा को लेकर अक्सर कहा जाता रहा है कि लघुकथा कहानी का बीजरूप है, लघुकथा में जीवन की व्याख्या संभव नहीं है, जिन विषयों पर कहानी, उपन्यास आदि लिखे जाते हैं उनपर लघुकथाएँ नहीं लिखी जा सकतीं। जीवन की सच्चाई इतनी गहरी है कि लघुकथा में समाहित नहीं हो सकती, लघुकथा जीवन की विसंगतियों की झलक दे सकती है, बस।

इन टिप्पणियों में से अधिकतर का उत्तर आज लिखी जा रही लघुकथाओं ने दे दिया है; पर इसके विषय को लेकर भ्रम की आज भी स्थिति बनी हुई है। क्या पुलिस, भिखारी, नेता, भ्रष्टाचार आदि ही लघुकथा के विषय हो सकते हैं? क्या उपन्यास कहानी के विषय और लघुकथा के विषय भिन्न–भिन्न प्रकार के होते हैं? जिस विषय पर लघुकथा लिखी गई हो, उस पर कहानी नहीं लिखी जा सकती या ठीक इससे उलट जैसी टिप्पणियाँ लघुकथा विषयक लेखों में प्रायः देखने को मिल जाती हैं।

लघुकथा में विषय को लेकर जब हम विचार करते है तो एक बात बिल्कुल स्पष्ट होकर सामने आती है कि लघुकथा भी साहित्य की दूसरी विधाओं की भाँति किसी भी विषय पर लिखी जा सकती है। भ्रम की स्थिति वहां उत्पन्न होती है जहाँ विषय को लघुकथा के कथ्य के साथ गड्डमड्ड करके देखा जाता है। लघुकथा भी अन्य विधाओं की भाँति किसी विषय विशेष को रेशे–रेशे की पड़ताल करने में सक्षम है। ऐसी सशक्त लघुकथाओं के संकलन सम्पादित करने की बात मेरे मन में आई थी। इन संकलनों की रचनाएँ इस दृष्टि से आश्वस्त करती हैं कि लघुकथा लेखकों ने एक ही विषय के विभिन्न पहलुओं पर अपनी कलम चलाई है और उस विषय का कोई कोना उनके लेखन से अछूता नहीं है। लघुकथा इस दृष्टि से काफी समृद्ध हो चुकी है।

यहाँ यह भ्रम की स्थिति भी दूर होनी चाहिए कि जिन विषयों पर लघुकथाएँ लिखी गई हों, उनपर कहानी नहीं लिखी जा सकती या लिखी गई कहानी के विषय पर लघुकथा के साथ जुड़े लघु शब्द को उसके शाब्दिक अर्थ में न समझा जाए बल्कि आकारगत लघुता की दृष्टि से देखा जाए। कई प्रतिष्ठित रचनाकार भी इस अंतर को समझने का प्रयास नहीं करते। मेरे एक वरिष्ठ कवि मित्र हैं, वे लघुकथा को कहानी का बीजरूप मानते हैं। उनकी दृष्टि में लघुकथा लिखना आसान है और कहानी लिखना मुश्किल। चूँकि बात विषय को लेकर चल रही थी तो इसी सन्दर्भ में बात आगे बढ़ाना उचित होगा। कस्तूरी कुण्डल बसे, मृग ढूढ़े बन माँहि, इस विषय पर उपन्यास भी लिखा गया है, कहानी और लघुकथा भी। तो यहाँ प्रश्न उठता है कि विषय की दृष्टि से कौन सी ऐसी विभाजक रेखा है जो लघुकथा को अन्य विधाओं से अलग करती है?

लघुकथा में लेखक सम्बन्धित विषय का मूल स्वर पकड़ता है। यहाँ यह स्पष्ट करना जरूरी है कि मूल स्वर का अभिप्राय मोटी बात से नहीं है बल्कि इसका तात्पर्य रचना में सम्बन्धित विषय और कथ्य के मूल (सूक्ष्म) स्वर से है। यही बिन्दु लघुकथा को कहानी से अलग करता है।

लघुकथा में लेखक सम्बन्धित विषय से जुड़े किसी बिन्दु पर फोकस करता है। फोकस की प्रक्रिया यांत्रिक नहीं होती बल्कि इसमें–(1) लेखक के दिलो दिमाग में बरसों से छाए अहसास (2) अकस्मात् प्राप्त सूक्ष्मदर्शी दृष्टि (3) विषय से सम्बन्धित कुछ विचार (कथ्य) सम्मिलित हैं। इस प्रक्रिया में उपन्यास कहानी की भाँति वर्षों लग सकते हैं।

यदि विषय को पेड़ मान लें और लघुकथा में उस पेड़ की एक अथवा दो पत्तियों के हरे पदार्थ, आपसी सम्बन्ध,स्टॉमेटा और उनसे हो रहे एवैपोट्रांस परेशन की बात की जाए तो उसे आसान कथारूप या कहानी का बीजरूप कैसे कहा जा सकता है। यह एक जटिल सृजन प्रक्रिया है, जिसे विच्छेदन किए बिना (विषय की डैप्थ में उतरे बिना) प्राप्त करना असम्भव है।

'स्कूल' लघुकथा का उल्लेख करना चाहूँगा–गाँव के छोटे से स्टेशन के प्लेटफार्म पर औरत बेचैनी से अपने बच्चे की राह देख रही है, जो तीन दिन पहले टोकरी भर चने लेकर पहली दफा घर से काम पर निकला है। परेशान औरत बार–बार ट्रेन के बारे में पूछती है तो स्टेशन मास्टर झल्ला जाता है। वह गिड़गिड़ाते हुए उसे बताती है कि बच्चे के पिता नहीं है, वह दरियाँ बुनकर खर्चा चलाती है। बेटा काम करने की जिद करके घर से निकला है। औरत बहुत चिन्तित है क्योंकि उसका बेटा बहुत भोला है, उसे रात में अकेले नींद नहीं आती है, उसी के पास सोता है । इतनी सर्दी में उसके पास ऊनी कपड़े भी तो नहीं हैं। दो रातें उसने कैसे काटी होंगी। सोचकर वह सिसकने लगती है। वह मन ही मन निर्णय करती

है कि अपने बेटे को फिर कभी अपने से दूर नहीं भेजेगी।

आखिर ट्रेन शोर मचाती हुई उस सुनसान स्टेशन पर खड़ी होती है। एक आकृति दौड़ती हुई उसके नजदीक आती है। वह देखती है, तनी हुई गर्दन...बड़ी–बड़ी आत्मविश्वास भरी आँखें....कसे हुए जबड़े.....होठों पर बारीक मुस्कान.....

माँ तुम्हें इतनी रात गए यहां नहीं आना चाहिए था। अपने बेटे की गम्भीर चिन्ता भरी आवाज उसके कानों में पड़ती है। वह हैरान रह जाती है....इन तीन दिनों में उसका बेटा इतना बड़ा कैसे हो गया!

यह दुनिया सबसे बड़ी पाठशाला है,श लघुकथा में इस मूल स्वर को पकड़ने का प्रयास किया गया है। इसी विषय पर मैक्सिम गोर्की का आत्मकथात्मक उपन्यास भी पढ़ने को मिल जाएगा। इस विषय को लेकर कहानी भी लिखी जा सकती है।

लघुकथा की सीमाएँ क्या होनी चाहिए? साहित्य की किसी भी विधा को किसी भी सीमा में बांधना उचित नहीं है। रचनाकार के भीतर स्वाभाविक रूप से तैयार हुई रचना अपने आप में मुकम्मल कृति होती है। लघुकथा भी इसका अपवाद नहीं है। लघुकथा को कई लोगों ने शब्द सीमा में बाँधने की बात की है। पर हम देखते हैं कि सौ शब्दों में गुंथी लघुकथा भी उतना ही प्रभाव छोड़ती है जितना कोई दूसरी पांच–छह सौ शब्दों की लघुकथा लघुकथा का विषय, कथ्य और उससे सम्बन्धित कुछ विचार मिलकर उसका आकार बनाते हैं, फिर उसे शब्द सीमा में कैसे बाँधा जा सकता है?

पहले भी कहा गया है कि लेखक लघुकथा में मूल स्वर पकड़ता है और उसी को केन्द्र में रखकर कथ्य विकास अतिरिक्त रचना कौशल एवं अनुशासन की माँग करता हैं यहां अनुशासन लघुकथा के शीर्षक और समापन बिन्दु पर भी लागू होता है, जिसके अभाव में लघुकथा अपना फ़ॉर्म खो बैठती है। रमेश बत्तरा की लघुकथा 'सूअर' के माध्यम से लघुकथा के लिए अनिवार्य अनुशासन (अंकुश) को समझा जा सकता है। लेखक छोटे–छोटे चुस्त वाक्यों के जरिए कामगार कथानायक की दैनिकचर्या,असामाजिक तत्वों का चरित्र उभारता है। समापन बिन्दु देखें, तो नींद क्यों खराब करते है भाई! रात की पाली में कारखाने जाना है, वह करवट लेकर फिर से सोता हुआ बोला, यहाँ क्या कर रहे हो? जाकर सूअर को मारो न? सूअर में जो अर्थ व्यंजित होता है; वह सम्पूर्ण साम्प्रदायिक मानसिकता पर प्रहार करता है ।

अतः लघुकथा को सीमाओं में बांधने की बात छोड़कर इसमें अनुशासन की बात को समझा जाना चाहिए ताकि अधिक से अधिक सशक्त लघुकथाएँ सामने आएँ। *** मोबा–9634258583

आलेख–

लघुकथा; कुछ अनुत्तरित प्रश्न

रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'

आज लघुकथा ने विषय से लेकर प्रस्तुति तक एक लम्बी यात्रा तय कर ली है, जिसमें प्रबुद्ध लेखकों और सम्पादकों ने पर्याप्त कार्य किया है। इस यात्रा में कौन साथ चला है, कितना साथ चला है, यह व्यक्ति विशेष की क्षमता पर निर्भर है। आगे की यात्रा के लिए वर्त्तमान से सन्तुष्ट होकर बैठ जाना उचित नहीं है। इसी के साथ यह भी समझना ज़रूरी है कि किसी के द्वारा किए गए प्रत्येक कार्य से सदा असन्तुष्ट रहना भी कल्याणकारी नहीं है। सभी कार्यों में सदा दोष ही तलाश करना (अपनी दुर्बलताओं की तरफ़ न देखकर) एक नकारात्मक सोच है। यह धारणा न अतीत में उचित थी और न आज उपयुक्त है। लघुकथा के विकास के लिए निष्पक्ष होकर कार्य करना चाहिए। छिद्रान्वेषण में अपनी शक्ति वही नष्ट करता है, जिसे अपने ऊपर भरोसा नहीं होता।

लघुकथा को लेकर कभी–कभी बयानबाजी से नए रचनाकार भ्रमित होने लगते हैं। समय के साथ किसी भी विधा के मानदण्ड बदलते हैं या उनकी युगानुरूप व्याख्या होती रहती है। जीवन्त विधा को कुछ लोग अपने वक्तव्यों से सीमित नहीं कर सकते। विधा का प्रवाह अपने लिए सदैव नए मार्ग तलाशता रहता है। कोई रचना या रचनाकार उत्कृष्ट है या नहीं, इसे समय और सजग पाठक ही तय करते हैं। फिर भी संक्षेप में ये बिन्दु विचारणीय हैं–

कथानक के दृष्टिकोण से लघुकथा में एक घटना या एक बिम्ब को उभारने की अवधारणा सार्थक है। अधिक स्पष्ट रूप से कहा जाए तो एक या दो घटनाएँ होने पर भी उनमें बिम्ब प्रतिबिम्ब जैसा सम्बन्ध हो अर्थात् लघुकथा का समग्र प्रभाव एक पूर्ण बिम्ब का निर्माण करता हो।

प्रकृति पात्र कहानियों में भी उपादान नायक बनते रहे हैं, परन्तु बहुत ही कम। 'उद्भिज परिषद्' इसका सार्थक उदाहरण है। लघुकथा में ये केन्द्रीय पात्र की भूमिका निभा सकते हैं जैसे लघुकथा–'आदमी और पेड़', लेकिन यह कोई विशिष्ट विभाजन नहीं है। हम जड़ और चेतन जगत के समस्त उपादानों को उनके मानवीकृत रूप में प्रस्तुत करते हैं। अतः 'मानवरूप' होना ही अभीष्ट है।

शास्त्रीय शब्दावली में कहा जाए–शब्द का स्थान शब्दकोश में है। किसी वाक्य का अंग बन जाने पर वह 'पद' कहलाता है। कभी–कभी कोई वाक्य अपने पूर्वापर सम्बन्ध के कारण 'पद' तक भी सीमित रह सकता है। अतः वहाँ वह पदरूप होते हुए भी वाक्य ही है। वाक्य भाषा की सार्थक इकाई है अतः वाक्य का होना अनिवार्य हैं कथोपकथन लघुकथा का अनिवार्य तत्त्व नहीं है; लेकिन इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि जहाँ कथोपकथन लघुकथा को तीव्र बना रहा हो ,उसे उस स्थान से बहिष्कृत कर दिया जाए।

'काल–दोष' न कहकर इसे 'अन्तराल' कहा जा सकता है। दोष का किसी रचना के लिए क्या महत्त्व? अन्तराल को बिम्ब से जोड देना चाहिए. अन्तराल, बिम्ब को पूर्णता प्रदान करता है या उसे अस्पष्ट एवं अधूरा छोड़ देता है, यह देखना ज़रूरी है। अन्तराल की पूर्ति 'पूर्वदीप्ति' से हो सकती है। अगर पूर्वदीप्ति से भी खंडित बिम्ब पूर्ण नहीं होता, तो अन्तराल की खाई लघुकथा को लील लेगी।

कथोपकथन कभी विचारात्मक होता है तो कभी घटनाक्रम की सूचना देने वाला या घटना को मोड़ देने वाला। कथोपकथन यदि घटना बिम्ब को उद्घाटित करता है तो इसे लघुकथा की परिधि में ही माना जाएगा। कथोपकथन से लघुकथा को पूर्णता प्रदान करना लेखक की क्षमता पर निर्भर है।

लघुकथा की भाषा सरल होनी चाहिए. पांडित्यपूर्ण भाषा लघुकथा के लिए घातक है। भाषा व्यंजनापूर्ण हो तो और अधिक अच्छा होगा लेकिन हर लघुकथा में 'व्यंजना' का आग्रह उसे दुरूह भी बना सकता है। 'शीर्षक' के विषय में भी यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि वह लघुकथा की धुरी का काम करे। शीर्षक को सिद्ध करने के लिए लघुकथा न लिखी जाए। शीर्षक लघुकथा का मुकुट है। मुकुट वही अच्छा होता है जो न सिर में चुभे और न सिर के लिए भार हो।

शैली तो कथ्य के रूप पर भी निर्भर है। एक ही व्यक्ति यार–दोस्तों में, माता–पिता के सामने, अपरिचितों के सामने, अलग–अलग ढंग एवं व्यवहार प्रस्तुत करता है। शैली–लघुकथाकार एवं कथ्य की सफल अभिव्यक्ति है। विषय एवं आवश्यकतानुसार उसमें बदलाव आएगा ही। यदि एक लेखक की सभी लघुकथाएँ (विषय वस्तु भिन्न होने पर भी) एक ही शैली में लिखी गई हैं तो वे उबाऊ शैली का उदाहरण बन जायेगी।

श्रेष्ठ लघुकथा वह है, जो पाठक को बाँध ले। इसके लिए ऐसा कठोर नियम नहीं बनाया जा सकता कि सभी कथातत्त्व उपस्थित हों। सबकी उपस्थिति में भी लघुकथा घटिया हो सकती है। पात्र कथावस्तु, भाषा–शैली, उद्देश्य, वातावरण, संवाद, अन्तर्द्वन्द्व आदि आवश्यक तत्त्व संश्लिष्ट रूप में उपस्थित हो। ठीक ऐसे ही जैसे चन्द्रमा और चाँदनी–दोनों अलग–अलग होते हुए भी संश्लिष्ट हैं। एक की अनुपस्थिति / उपस्थिति दूसरे की भी अनुपस्थिति / उपस्थिति बन जाती है।

किसी विधा का मूल्यांकन उसके पाठक करते हैं। काजियों की स्वीकृति न होने पर भी लघुकथा निरन्तर आगे बढ़ती रही है। 'काजी की मारी हलाल' वाली स्थिति लघुकथा के साथ नहीं चलेगी। इस समय लिखने की बाढ़ आ रही है। बाढ़ थमेगी तो निर्मल जल ही बचेगा–कूड़ा–कचरा स्वतः हट जाएगा। जीवन का आवेशमय, सार्थक एवं कथामय लघुक्षण अपनी तमाम लघुकथाओं के बावजूद इलेक्ट्रानिक ऊर्जा से कम नहीं। व्यंग्य–कहानी, उपन्यास लेख–किसी भी रचना में हो सकता है अतः लघुकथा के साथ 'व्यंग्य' विशेषण जोड़ना जँचता नहीं।***

ईमेल– rdkamboj@gmail.com

****

जीवन के सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्पन्दनों अथवा मनः स्थितियों को रेखांकित करने की सशक्त एवं पूरी क्षमता रहती है, जो पाठक को गहरे में जाकर उसकी संवेदना को जगाने का, झकझोरने का, और आन्दोलित करने का एक सार्थक प्रयास करती है। डॉ.सुरेन्द्र गुप्त

आलेख–

आधुनिक लघुकथा अपने तेवर बदल रही है

डॉ. सुरेन्द्र गुप्त

लघुकथा–विधा साहित्य की स्वतन्त्र विधा के रूप में स्थापित हो चुकी है अर्थात् मान्यता प्राप्त कर चुकी है, इसमें अब कतई किसी प्रकार का संशय नहीं है। अच्छी संख्या में एकल लघुकथा संग्रहों का प्रकाशन तथा देश के कोने–कोने से प्रकाशित कितनी ही प्रतिष्ठित एवं नामी–गिरामी पत्रिकाओं द्वारा लघुकथा–विशेषांक निकालना, और साहित्यकारों द्वारा पूरे देश में चर्चाएं और परिचर्चाएं आयोजित करना, इसी तथ्य की ठोस एव प्रामाणिक पुष्टि है।

लघुकथा कहने को लघु–कथा है, किन्तु इसमें जीवन के सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्पन्दनों अथवा मनःस्थितियों को रेखांकित करने की सशक्त एवं पूरी क्षमता रहती है, जो पाठक को गहरे में जाकर उसकी संवेदना को जगाने का, झकझोरने का, और आन्दोलित करने का एक सार्थक प्रयास करती है। आज की लघुकथा समसामयिक जीवन और परिवेश से उपजी है, जिसमें छोटी से छोटी घटना, भाव, प्रसंग अथवा मनःस्थिति अपने जीवन्त रूप में सांस लेती दिखाई देती है। लघुकथा कहने की विशेष कला है। वास्तव में साहित्य की अन्य विधाओं की तरह कुछ विशेषताएं हैं, जिनके कारण यह विधा लोकप्रियता के सोपानों को छूती हुई, स्वतन्त्र रूप से अपनी संप्रभुता का सिक्का कायम करने में सक्षम हो सकी है।

कथा–साहित्य की अन्य विधाओं कहानी तथा उपन्यास के पास एक व्यापक फलक होता है, जिसमें कथ्य, पात्रों का चरित्र–चित्रण, कथोपकथन, वातावरण–परिवेश और घटनाओं आदि की विशिष्ट भूमिका रहती है, जो कथ्य को चर्मोत्कर्ष तक ले जाने में सक्रिय भूमिका निभाती हैं। इसमें एक नहीं अनेक सहायक घटनाएं हो सकती हैं। कहानीकार के पास अपनी मूल बात अथवा समस्या रखने के लिए पर्याप्त पन्नों के साथ–साथ, शब्दों का पर्याप्त भण्डार भी रहता है। किन्तु लघुकथाकार को बस झट से अपनी बात कहनी होती है, कई बार तो वह संकेत–संकेत में अपनी बात कह डालता है। कहानी में अर्थवत्ता का कारण उसका आकार ही होता है, किन्तु लघुकथा में तो संक्षिप्तता ही उसका गुण है। अतः उपन्यास और कहानी की तुलना में लघुकथाकार के पास बहुत ही परिसीमित आकाश रहता है। जीवन की एक घटना, एक भाव या विचार अथवा विषय को कथ्य के लिए चुनकर, उसे लघुकलेवर में कलात्मक ढंग से बाँधना ही एक उत्कृष्ट एवं प्रभावशाली रचना को जन्म देता है। पात्रों के पारस्परिक कथोपकथन–संवाद तथा भाषा किसी भी रचना को जीवंतता प्रदान करती है। छोटे–छोटे सटीक एवं स्वाभाविक संवाद ही नहीं अपितु सहज, सरल और संप्रेषणीय प्रांजल भाषा भी सशक्त रचना का स्वरूप तय करती है। एक बहुत ही छोटे से कैन्वास पर पात्रों में द्वन्द्व, उनका विकास दिखाये जाने की क्षमता भी लघुकथा में पूरी तरह से व्याप्त रहती है। रचनाकार एक कथ्य को किस प्रकार सशक्त ताने–बाने में बुनता है, यह उसके अपने कलात्मक कौशल पर निर्भर करता है। सहज, सरल एवं संप्रेषणीय भाषा के साथ–साथ पात्रों के कथोपकथन में यदि आंचलिक शब्दों का प्रयोग किया जाता है तो वह सोने पर सुहागे का तो काम करता ही है, उससे भी आगे रचना की विश्वसनीयता को भी मजबूत जमीन प्रदान करता है।

यदि हम लघुकथा के आधुनिक युग को खंगालें अर्थात् अस्सी–नब्बे या उससे थोड़ा सा पहले के काल–खण्ड में लिखी गई लघुकथाओं का विश्लेषण करें तो यह बात उभर कर सामने आती है कि उनमें भले ही किसी भी सामाजिक–राजनीतिक विसंगति अथवा विद्रूपता के कथ्य को उभारा गया हो, उनके गर्भ में कहीं न कहीं 'व्यंग्य' के बीज अवश्य ही छिपे हुए दिखाई दे जाते हैं। मेरा ऐसा मानना है कि लघुकथा को लघुकथा बनाने में व्यंग्य की सार्थकता रहती है। इसे यों भी कहा जा सकता है कि रचना की आत्मा में 'व्यंग्य' अपने तीखे तेवर के साथ परोक्ष रूप से छिपा रहता है, इससे कतई इन्कार नहीं किया जा सकता।

लघुकथा–विशेषज्ञों, समीक्षकों और विद्वानों के बीच इसके आकार को लेकर प्रायः चर्चा–परिचर्चा अथवा बहस या विचार–विमर्श होता रहा है। लेकिन कोई ठोस अथवा पुख्ता परिणाम उभर कर सामने नहीं आ सके हैं। लघुकथा 25 शब्दों की भी हो सकती है और 300 शब्दों की या उससे ज्यादा भी। मेरे विचार में आकार या शब्दों की संख्या वास्तव में कथ्य की विषय–वस्तु के चुनाव पर निर्भर करती है। इसमें किसी भी प्रकार की लक्ष्मण–रेखा को खिंचना न्यायसंगत नहीं कहा जा सकता।

एक और प्रश्न, क्या लघुकथा में, एक लघु कलेवर में, जहाँ कम से कम शब्दों में एक भाव को, एक घटना को रचना का रूप दे दिया जाता है, क्या उसमें विम्ब–विधान या शब्द–चित्रों को उभारा जा

सकता है? यह बात विचारणीय है। मेरे विचार में, कथ्य की अन्य विधाओं की तरह, लघुकथा में भी बिम्ब–विधान योजना की पूरी संभावनाएं हैं। पात्रों अथवा चरित्रों के पारस्परिक संवाद तथा कथोपकथन द्वारा पाठक के समक्ष पूरी घटना को जीवंत रूप में उत्कीर्ण अथवा अकिंत किया जा सकता है। अतः शब्द–चित्रों के निर्माण द्वारा एक रचना को उत्कृष्ट ही नहीं, उसे प्राणवान भी बनाया जा सकता है, इससे लघुकथा में चित्रित घटना अथवा कथ्य, विश्वसनीयता के धरातल पर और भी अधिक सशक्तता से खड़ा दिखाई देगा, ऐसा मेरा विश्वास है। ।

लघुकथा के अधिकारिक विद्वान यह सिद्धान्त लगभग प्रतिपादित कर चुके हैं कि लघुकथा का अंत मारक होना चाहिए। किन्तु मेरे विचार में यह मारक अंत की चमक कहीं न कहीं कमोबेश अब फीकी पड़ती जा रही है। मारक अंत की बात रचना की विषय–वस्तु या कथ्य की बुनावट–बनावट पर भी निर्भर करती है। आज की लघुकथा अपना इतिहास रच रही है। यह काल–खण्ड उसके विकास का काल–खण्ड है। वह अपने आयाम बदल रही है, तेवर बदल रही है। यह बात भी तथ्यपूर्ण है कि रचना में कुछ तो ऐसा हो, जिसे लेखक, अपने पाठक को संवेद्य रूप मे देना चाहे या संप्रेषित करना चाहे। रचना समय की आहट से पनपी हो, अथवा कल्पना की मंजुषा से, कुछ तो संप्रेषित करेगी ही। रचना का अंत पाठक को केवल एक झटका देकर न छोड़ दे, अपितु उसके भीतर एक सुख, सन्तोष अथवा कुछ तृप्ति सी प्रदान करे, यह तभी संभव है जब रचना का अंत सकारात्मक सोच से प्रेरित होगा। अतः किसी भी रचना का सौद्देश्यपूर्ण होना उसकी आवश्यकता है।

कुल मिलाकर किसी भी समसामयिक घटना की परतों के बीच सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप में छिपे सत्य को, संवेदनशील विषय को, चिन्तनशील अथवा विचारणीय बिन्दु को, जब कोई शब्दशिल्पी या लघुकथाकार अपनी सत्यान्वेषी दृष्टि से कथ्य की चाक पर चढ़ाता है, तो ही वह विकसित होकर रचना का आकार लेती है, लघुकथा के ताने–बाने को बुनती है। और यह सत्य है कि वह अपने लघुकलेवर में रचनाकार की प्रत्येक दृष्टि से परीक्षा लेती है। एक सटीक और प्रभावी लघुकथा की संरचना अपने आप में एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। दूसरे शब्दों में अपने बुद्धिकौशल, अनुभूति की तीक्ष्णता और अभिव्यक्ति की प्रखरता से ही रचनाकार अपनी रचना को कलात्मक ऊंचाइयों तक ले जाता है। विषय और परिवेश के अनुकूल कथ्य में कसावट, पात्रों की मनःस्थितियों को उनके भीतर के अहसासों को जीते हुए छोटे–छोटे सटीक और प्रभावी कथोपकथन, सहज–सरल भाषा और स्वाभाविक ढंग से कथ्य का विकास तथा धारदार, अप्रत्याशित अंत ही सशक्त, प्रभावी और दमदार रचना का आधार बनता है। यदि सत्य और विश्वसनीयता लघुकथा के अनिवार्य अंग हैं, तो संप्रेष्णीयता उसकी विशेषता।

यदि शब्दशिल्पी अथवा लघुकथाकार किसी समसामयिक घटना को, विचार को, भाव को, युग परिवेश के उस प्रसंग को अपनी कलात्मक बुद्धि से तराश कर मन्दिर में लगी मूर्ति के समान सुन्दरता प्रदान करता करता है तो वह रचना ही वास्तव में कालजयी बनती है। यह ठीक है आज मानवीय मूल्यों का ह्रास हो रहा है लेकिन लघुकथा शिल्पी को, रचनाकार को अपने विजन में परिवर्तन लाकर नव्यता का संचार करना चाहिए। यथातथ्य चित्रण से क्या रचनाकार समाज को कुछ दे पा रहा है या केवल अपने मन की भड़ास निकाल रहा है। रचनाकार का सृजन समाज–सापेक्ष होना चाहिए। समाज को उससे कुछ अपेक्षाएं हैं। वह ऐसी रचनांए दे, जो कहीं न कहीं लोकरंजन के दायरे में आती हों और सत्यं, शिवं, सुन्दरम् की अभिव्यक्ति को मुखरित करती हों। मेरे विचार में सत्यम्, शिवम्, और सुंदरम् ही गिरते मूल्यों का सर्वोत्तम विकल्प हो सकता है। रचना यदि आदर्शोन्मुखी होगी तो कहीं ज्यादा प्रभावशाली होकर कालजयी रचना का रूप ले सकती है। लेकिन उसके साथ एक बात निर्विवाद रूप से जुड़ी हुई है कि रचना अपनी विश्वसनीयता की सत्यता को बराबर बनाए रखे।

लघुकथा की संरचना में मेरी दृष्टि सदैव एक घटना को यथार्थ के धरातल पर बुनते हुए उसमें सकारात्क सोच को उभारने की रही है, जो समाज–सापेक्ष हो, पाठकों को तृप्ति दे, सुख दे और अवर्चनीय सन्तोष प्रदान करे। कई बार ऐसा भी महसूस किया गया है कि रचना को आदर्शोन्मुखी गढ़ने के मोह में उसकी विश्वसनीयता दूर छिटक जाती है अथवा वह अपनी सत्यता खो बैठती है। ऐसी दशा में रचना को यथार्थवाद की देहरी तक सीमित रखना मजबूरी भी हो जाती हैं। अभिप्राय यह है कि रचना की आधारशिला, यथार्थवाद पर तो टिकी होती है, किन्तु रचना में यदि एक सकारात्मक सोच उभर कर सामने आती है तो वह कहीं न कहीं सत्यं, शिवं, सुन्दरमं अथवा लोकरंजन की भावना को प्रदर्शित करने में भी सक्षम होती है। मेरी लघुकथाओं के

विषय–वस्तु समाज में व्याप्त असंगतियों–विसंगतियों, तनावों–अभावों, कुण्ठाओं, और क्षरण होते मूल्यों का पारदर्शी आइना प्रस्तुत करते हैं। भले ही इनका परिप्रेक्ष्य राजनीतिक हो, सामाजिक हो, शिक्षण का हो या धर्म का अथवा इनमें बदलते संस्कारों की बात हो, टूटता घर–परिवार हो, रिश्तों में आई कड़वाहट हो, या फिर दुख–दर्द की अभिव्यक्ति हो। मोटे रूप से इस संग्रह में संकलित ये रचनाएं उद्देश्यपरक हैं, संवेदनशील हैं, और पाठक के मानस पटल पर दस्तक देने में सक्षम हैं, ऐसी मेरी धारणा है।

लघुकथा की भाषा सहज, सरल तो हो ही, इसके साथ–साथ इनमें रचना के सौन्दर्य की अपेक्षानुसार आंचलिक शब्दों का प्रयोग भी किया जाए। सटीक और सार्थक शीर्षक ढूंढना मेरी कमजोरी रही है, पर फिर भी कोशिश यही रही है कि ऐसे शीर्षक तलाशे जाएं जो रचना के मर्म को प्रतिबिम्बित करें ही, साथ ही रोचक, आकर्षक और नए भी प्रतीत हों। ***

डॉ.सुरेन्द्र गुप्त
आर.एन–7,
महेश नगर,
अम्बालाछावनी–133001
मोबा–9416250279

आलेख–

लघुकथा और शास्त्रीय सवाल

अशोक भाटिया

लघुकथा ज्यों–ज्यों फैलाव ले रही है, त्यों त्यों उससे कुछ सवालों को अकारण ही जोड़कर स्वयं को उभारने की कोशिश भी होती रही है। ऐसी स्थिति में रचना और आलोचना तथा इनके रिश्तों पर बुरा असर पड़ा है।

वे सिद्धांत, जो रचना को बेहतरी की ओर न ले जाएं या व्यावहारिक न हों, व्यर्थ होते है। सिद्धांत रचना में से जन्म लेते है। यदि उन्हें बाहर से लागू करने का प्रयास किया जाएगा तो या तो रचना नहीं रहेगी या सिद्धांत नहीं रहेंगे। उदाहरण दिलचस्प है। हिंदी में महाकाव्य के लिए जो लक्षण संस्कृत और हिंदी के नामी आचार्यो ने दिए उन पर हिंदी का एक भी महाकाव्य खरा नहीं उतरता। इससे रामचरितमानस, पद्मावत, साकेत या कामायनी का महत्व कम नहीं हो जाता। यहां तक कि आधुनिक काल में महाकाव्य के नए लक्षण दिए गए, जो काव्य के कंटेंट और थीम को अधिक महत्व देते हैं। हालाँकि ये लक्षण एक क्लासिक किस्म की काव्य विधा के लिए थे लेकिन लघुकथा तो इस दायरे में नहीं आती है।

एक समय था, जब कहानी और उपन्यास को सात तत्वों के आधार पर परखा जाता था, लेकिन 1960 के आस–पास कथाकारो व समीक्षको को अनुभव हुआ कि रचना की संश्लिष्टता को तत्वों में बाँटकर नहीं परखा जा सकता। समय के अनुसार सामाजिक प्रतिक्रियाएँ तेज़ होती जा रही है, ऐसे में ये स्थिर मापदण्ड उसके लिए प्रासंगिक नहीं रह गए। लेकिन इधर हिन्दी लघुकथा के क्षेत्र में लेखन के आधार तय करने के लिए कुछ शास्त्रीय सवाल रह–रहकर उभारे जा रहे हैं। तात्विक परख एक तरह की अध्यापकीय समीक्षा है, जो रचना की संवेदना से प्रायः दूर रहती है और फिर समीक्षा की कसौटी आप जैसी भी बनाएँ, रचना करने के लिए कोई ऐसे आधार कैसे बनाए जा सकते हैं?

एक सवाल है कि कथानक के दृष्टिकोण से लघुकथा में एक घटना या एक बिम्ब को उभारने की अवधारणा कहां तक सार्थक है? लघुकथा में घटना एक भी हो सकती है, एक से अधिक भी और एक भी नहीं हो सकती। कई बार केवल स्थिति ही काफी होती है। तो सभी संभावनाएँ है लेखक के सामने खुली है। उदेश्य के लिहाज से जिस रूप में वह अपनी बात को ठीक ढंग से कह पाए वही उसे अपनाना चाहिए।

यही बात बिम्ब के बारे में कहीं जा सकती है। एक से अधिक बिम्बो का प्रयोग भी हो सकता है। बिम्ब रचना के सौंदर्य में वृद्धि तो करता है, लेकिन कई रचनाओं में इसको लाना उसकी गतिशिलता में बाधक बन सकता है। इसलिए एक घटना और एक बिम्ब का सिद्धांत कोई मायने नहीं रखता। रचनात्मक कौशल से बड़े फलक पर भी लघुकथा लिखी जा सकती है।

दूसरा सवाल है कि क्या लघुकथा में पेड़–पौधे आदि प्रकृति के उपादान केंद्रीय पात्र की भूमिका निभा सकते हैं? मेरा अपना मत है कि कथाकार को एलीगरी से यथासम्भव बचना ही चाहिए। इसमें रोमानी मानसिकता का और समाज से कटने का खतरा साफ़ दिखाई पड़ता है। ये खतरे लेखक के साथ–साथ पाठक को भी चपेट में ले सकते हैं। पेड़–पौधों का लघुकथा में प्रयोग करना या उन्हें नायक बनाना वर्जित नहीं है, लेकिन उन पर प्राथमिक तौर पर निर्भर

करना भी ठीक नहीं है। यदि मनुष्य पात्र को रचना में उतारने से लेखक अपनी बात बेहतर कह सकता है, तो पेड़–पौधों का सहारा लेने की क्या ज़रूरत है? मनुष्यो की जटिल मानसिकता का, जटिल सम्बंधो का, आज के जटिल व संश्लिष्ट यथार्थ का आरोप पेड़ों आदि पर कैसे कर सकते हैं? यह भी अस्वाभाविक है कि कोई चिड़िया या कबूतर मानव–मन का विश्लेषण करते हुए दिखाए जाएँ। वैसे खलील जिब्रान ने एलीगरी का बहुत और असरदार प्रयोग किया है। लेकिन आज जैसी रचनाओं की ज़रूरत है, उसमें इसका अधिक प्रयोग रचनात्मक लक्ष्य को पीछे धकेल देगा। आज जब, सीधी कार्रवाई और निर्णयात्मक लड़ाई की बात की जा रही है, तो हमे अपनी बात यथासम्भव सीधे–सीधे ही कहनी होगी।

तीसरा सवाल यह है कि कथ्य संरचना में शब्द और वाक्य तथा कथोपकथन (संवाद) तत्वों का होना अति आवश्यक है या नहीं ?

एक रचना को वाक्य के स्तर पर न तो परखा जा सकता है, न ही लिखते समय लेखक का ध्यान वाक्य संरचना की विशेषताओं पर रहता है। जब कंटेंट अपना रूप स्वयं निर्धारित करता है तो वाक्यों व संवादों के छोटे/चुस्त होने की बात रचना पर कैसे लादी जा सकती है? संवाद स्वयं में रचना का महत्वपूर्ण तत्व होता है। इससे कई बार बहुत बड़ी बात कही जा सकती है, लेखक को हस्तक्षेप भी नहीं करना पड़ता। लेकिन संवादों का होना शर्त नहीं है। लघुकथा में संवाद हो भी सकते हैं, नहीं भी हो सकते हैं और सिर्फ संवादों के बल पर लघुकथा लिखी जा सकती है। जब पूरी कहानी (ऊपर, नीचे और दरमियान लेखक सआदत हसन मण्टो, सन्दर्भ पहल 31) संवाद शैली में लिखी जा सकती है, तो लघुकथा क्यों नहीं लिखी जा सकती? संवादों का प्रयोग लेखक व रचना पर निर्भर करता है।

कुछ लघुकथाकार,–समीक्षक काल के अन्तराल को लघुकथा का दोष मानते है। मेरे विचार में अन्य विधाओं में कभी प्रचलित रही प्राचीन कसौटियों को लघुकथा में लाकर खड़ा करने का कोई औचित्य नहीं है। कालदोष (और स्थानदोष) की बात सबसे पहले अरस्तू ने उठाई थी लेकिन शेक्सपियर ने अपने नाटकों में उस कसौटी को कोई महत्व नहीं दिया। आखिर हर रचना की अपनी प्रकति और अपनी ज़रूरत होती है। हिंदी में नाटक की समीक्षा के लिए प्रसाद–युग तक त्रिदोष (समय, स्थान और कार्य का अन्तराल) को एक कसौटी बनाया गया, उसके बाद रचनात्मकता पर से यह बन्धन हट गया। दरअसल कालदोष वाली बात अपने में जड़ अवधारणा है। काल एक निरन्तर गतिशील प्रवाह है, जिसका वर्तमान अतीत में जुड़ता और भविष्य में घटता रहता है। लघुकथा की एक समय में घटित होने की कसौटी उसका गला घोंट देने में ही सहायक होगी। इस कसौटी से एक स्थिर और सतही पॉप्युलर किस्म के यथार्थ को लेकर लिखी जाने वाली लघुकथाओ को बल मिलेगा। कई बार एक लम्बे समय को लेकर लघुकथा में अपनी बात अधिक सघन व असरदार ढंग से कही जाती है। जटिल, संश्लिष्ट व गतिशील यथार्थ को पकड़कर उसे कलात्मक यथार्थ तक पहुँचाने के लिए लेखक के पास विविध प्रयोगो के क्षेत्र खुले रहने चाहिएँ। कविता, उपन्यास और कहानी में एक लम्बे समय की बात को कहने के लिए लेखक कल से आज और आज से कल पर सुविधा या जरूरत के अनुसार फ्लिप करता है। समय का एक बड़ा दायरा, बड़ा फलक कई कथानकों के लिए जरूरी होता है। लघुकथा के लघु कलेवर में लेखक यदि समय के विशाल फलकवाले कथानक को सफलता से निभा जाता है, तो यह उसका रचनात्मक कौशल कहा जाएगा।

अनेक विश्वप्रसिद्ध बाल कथाओ में काल की सीमा का बन्धन नहीं माना गया। मूर्ख गड़रिया में अलग–अलग समय में गड़रिया कुल चार बार शेर–शेर चिल्लाता है। इस तरह काल–दोष देखने लगे तो उसमे तीन बार अन्तराल आया है, लेकिन लघुकथा प्रभावित करती है। पहली तीन बार झूठ–मूठ चिल्लाने पर लोग मदद के लिए आते हैं। चौथी बार सचमुच शेर के आने पर वह चिल्लाता है, पर लोग अब झूठ समझकर मदद को नहीं आते। इस लघुकथा का उदेश्य अन्तराल को दिखाए बिना पूरा हो ही नहीं सकता था। इसलिए एक ही समय में घटना होने की कसौटी अतार्किक लगती है।

उद्देश्य की दृष्टि से लघुकथा में अन्विति एकतानता होगी तो कालदोष वाली बात उसका बड़ा गुण दिखाई देगी। पाठक भी रचना के उद्देश्य को लेकर प्रभावित होता है,चाहे रचना कितने स्थानों और समय तक फैली हो। प्रसिद्ध व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई की कई लघुकथाएँ काल की सीमा से ऊपर है। सूअर, अमरता, लिफ्ट, बाप बादल, प्रॉपर चौनल आदि उनकी ऐसी ही लघुकथाएँ है। इस लघुकथा में काल को लेकर लेखक पर बन्धन नहीं लगाना चाहिए। एक उद्देश्य, एक बात के हिसाब से लेखक जहाँ जाना चाहता है, वह जाएगा ही। तो ऐसी शुष्क और गैर–रचनात्मक कसौटियाँ लघुकथा ही नहीं, किसी भी प्रकार के लेखन पर लागू नहीं होतीं। लेखक

रचनात्मक प्रक्रिया से गुजरते हुए इन कसौटियों पर कभी ध्यान नहीं देता, दे भी नहीं सकता। उसके सामने जीता–जागता, हलचलो से भरा जीवन है, पात्र हैं, लेखन का उद्देश्य है। रचना अगर लेखक के विचारशील–संवेदनात्मक व्यक्तित्व से उपजी है, तो वह उन सवालों से ऊपर है, बहुत ऊपर है। रचनात्मक क्षण इन प्रश्नों से अलग रहते हैं। बकौल रमेश बतरा– ''विचार और अनुभव तो जिन्दगी को भी पीछे छोड़ जाते है, शर्त तो क्या चीज़ है?''

एक श्रेष्ठ रचना वह है जिसमे पाठक की सोच, भावना और संवेदना को सही दिशा में प्रभावित करने d h {ker k gk***

डॉ.अशोक भाटिया
बसेरा,
1882, सेक्टर–13,
करनाल–132001
मोबा–9416152100

कथानक के दृष्टिकोण से लघुकथा में एक घटना या एक बिम्ब को उभारने की अवधारणा सार्थक है। *रामेश्वर काम्बोज 'हिमांशु'

पाठकीय पत्रांश

अंक में आलेखों का प्रकाशन और लेखकीय अच्छा चिंतन है। रचनायें भी सामयिक है।

*रामनिहाल गुंजन, आरा (बिहार)

नया अंक मिला, इस बार पत्रिका का स्तर प्रशंसनीय है। लघु पत्रिकाओं की नियति तो जग जाहिर है किन्तु सम्यक् सतत संचालित रहकर इतिहास रच रही है।

*राजेश्वरी शांडिल्य, लखनऊ (उ.प्र.)

सम्यक का अंक मिला, स्तरीय अंक के लिए बधाई।

*डॉ. सतीशराज पुष्करणा, पटना

सम्यक का अंक मिला। आपकी कोशिश वाजिब है। सामग्री भी पठनीय है। हार्दिक बधाई।

*डॉ अंबुजा मलखेड़कर, कलबुर्गी, कर्नाटक

ताजा अंक के आलेख पठनीय एवं चिंतनीय है। कवितायें स्तरीय हैं।

*डॉ.वेदप्रकाश अमिताभ, अलीगढ़

स्तरीय रचनायें पढ़कर मन मुग्ध हो गया, खासकर आलेखों ने विशेषतः प्रभावित किया।

*अनिरूद्ध प्रसाद विमल, बांका (बिहार)

अंक पंसद आया, विशेषकर आलेख चिन्तनपरक हैं। गजलों की ताजगी मन को छू गयी।

*डॉ. महावीर सिंह, रायबरेली (उ.प्र.)

सीमित साधनों में विज्ञापन रहित परिस्थिति में भी विशुद्ध पत्रिका का अंक सभी रचनायें स्तरीय एवं चिंतनीय है।

– *डा राजेंद्र मिलन, आगरा

सम्यक् मिली। आभार। स्मरण के लिए धन्यवाद। रचनायें सभी पठनीय एवं चिंतनीय हैं।

*आदित्य चोपड़ा, रतलाम